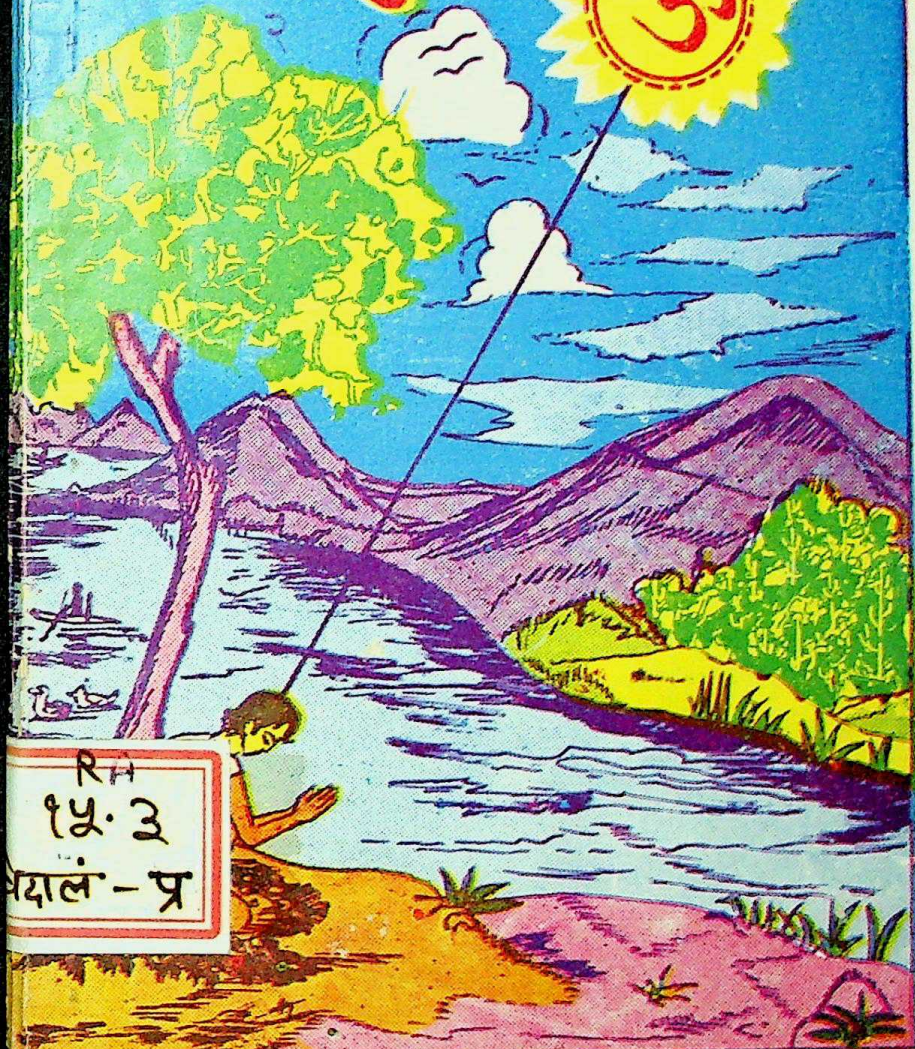
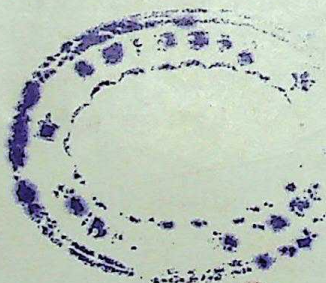


प्राथना सुमन



RA
१५.३
ध्यालं - प्र

ईश शरण में बैठा भक्त



सत

ले

अ

सम्मा

आयं

एवं

समा

वेदरत्न

वेदस

प्रक

प्र०

प्रो० स्वर्ण कुमार, कुलपति
वाराणसी प्रदत्त संग्रह

॥ ओ३म ॥

सतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मांसमृतं गमय'
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का दशम पुष्प"

प्रार्थना-सुमन भाग-२

लेखक— वेदरत्न, प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार,
आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१)
सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा- "संघड विद्यासभाद्वारा, जयपुर" ।
आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित
एवं पुरस्कृत (१९८३ में) द्वारा महर्षि रामानन्द निर्माण शतेन्द्र
समारोह समिति अजमेर ।

वेदरत्न" -मानद उपाधि(१९८४ में) द्वारा विश्व वेद परिषद्,
हरिद्वार

पता — वेदरत्न, रामप्रसाद वेदालङ्कार,

वेदसदन, आर्य नगर, ज्वालापुर जि० — सहारनपुर, (उ०प्र०)
पिन - २४६४०७, [फोन - १६६४ हरिद्वार]

प्रकाशक— "श्रद्धा साहित्य



127963

प्र० सं० २०००, द्वि० सं० ४०००,

१२३
वेद-प

विषय सूची

क्र० सं०		पृ० सं०
१-भूमिका		३
२-समर्पण		६
३-प्रार्थना संख्या	१ प्रियं नो अस्तु विश्वपतिः.....	७
४	२ तनूपा अग्नेऽसि -...	११
५	३ आ त्वा रम्भं न....	१७
६	३ इमां मे वरुण श्रुधी हवम्	२४
७	५ इन्द्र क्रतुं न आभर.....	३०
८	६ नमः पुरा ते वरुणोत.....	३५
९	७ अग्ने मृड मह्यं असि....	४०
१०	८ भद्रं भद्रं न आभर.....	४५
११	९ दूते दूह मा मित्रस्य.....	४६
१२	१० इमां मे वरुण श्रुधी हवम्.....	५३

मूल्य-"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ही इसका मूल्य है। जो इसे मंगवाना चाहें अथवा इसमें सहयोग देना चाहें तो वे लेखक के पते पर पत्र व्यवहार करें।

न्यून से न्यून ५०) रु० तक के दान की राशि किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित की जायेगी।

पुस्तक विक्रेता आदि को "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के लिये २५० २५ पैसे मात्र दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

भूमिका

आदरणीय “माता सरस्वती देवी जी आर्या” एवं आदरणीय ‘भाई श्री राम कृष्ण दास जी’ दोनों वर्ष भर में पर्याप्त समय आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में व्यतीत करते रहे हैं। दोनों ही वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी रहे हैं। दोनों पितृ परम्परा से आर्य विद्वानों, तपस्त्रियों, संन्यासियों और महात्माओं के प्रति हार्दिक श्रद्धा रखते रहे हैं और उनके उपदेशों को बड़ी श्रद्धा से सुनते और तदनुसार आचरण करते रहे हैं। उन्हीं की अध्यक्षता में वा उनके निर्देशन में सदा यज्ञ, जप, तप आदि अनुष्ठानों को करते रहे हैं। इसी का परिणाम था कि ये अपनी आयु के तृतीय चरण में वानप्रस्थ आश्रम में वास करते हुए अपने आन्तरिक उत्थान के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। ऐसा करते हुए भी जितना सम्भव हो सका वे दिल्ली में आर्य समाज के क्षेत्र में भी पर्याप्त सेवा करते रहे। इन्हीं गुणों के कारण आदरणीय भाई श्री राम कृष्ण दास जी भी आर्य समाज आर्य नगर पहाड़गञ्ज के पर्याप्त समय तक प्रधान रहे हैं और पूज्या माता सरस्वती जी बिना किसी पद के ही आर्य समाज की श्रद्धा भक्ति पूर्वक जी - जान से सेवा करती रहीं हैं। अध्यात्म के पिपामु बन कर भी यह समय पाते ही सामाजिक अभ्युत्थान के कार्य करते रहे हैं। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण भी इन्हीं के शुभ संकल्प के ही परिणाम से प्रकाशित हुआ।

आज से कुछ समय पूर्व अप्रैल में सम्भवतः ‘व्यास आश्रम’ हरिद्वार के अध्यात्म-शिविर के अवसर पर पूज्या तरिन्द्र बहिन जी मन्त्रिणी महिला आर्य समाज निर्वाण स्थली अजमेर द्वारा

पूज्य महात्मा आनन्द स्यामी सरस्वती जी की स्मृति में प्रकाशित 'प्रार्थना सुमन भाग-१' वितरित की गई और वह आप के (अर्थात् माता सरस्वती जी के) हाथों में भी पहुँची तो आपको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। आप ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा और पढ़ने पर आप में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि 'क्या ही अच्छा होता यदि यह पुस्तक मैं अपने जैसे अन्य कुछ सुपात्रों को भी प्रदान कर सकती, अपनी यज्ञपरायण और प्रभुपरायण सन्तति को भी प्रदान कर सकती।' इस के लिए आप लेखक से मिलीं और अपनी हार्दिक इच्छा अभिव्यक्त की। लेखक ने आप की भावना का हार्दिक अभिनन्दन कर आप को अपने क्षेत्र के सुपात्रों को प्रदान करने के लिए यथासम्भव प्रतियाँ प्रदान कीं इस से आप को बहुत हर्ष हुआ।

वे प्रतियाँ जब आप ने अपनी प्रिय सन्तति को प्रदान कीं तो वह भी प्रसन्न हुई। आप की सन्तति आप से इन्हीं दिव्य प्रसादों को पाकर सदा आप के प्रति समर्पित सी रहती है और भगवान् का हृदय से धन्यवाद करती है जिस ने कि उनको ऐसे धार्मिक यज्ञपरायण - प्रभुपरायण माता - पिता आदि प्रदान किये हैं। आप की सन्तति जिस प्रकार से आप दोनों का मन वचन कर्म से मान-सम्मान करती है वह दृश्य भी देखने वाला ही होता है। सहसा उस समय हृदय से यह प्रथना होने लगी है कि-प्रभु ऐसे दिव्य भावों से परिपूर्ण सन्तति सब को देता, जो धर्मपरायण हो, यज्ञपरायण हो, प्रभुपरायण हो और माता पिता आदि के उपकारों को सदा कृतज्ञ होकर मानती हो और उन पर हार्दिक श्रद्धा रखती हो।”

पूज्य माता जी एवं आदरणीय भाई जी ने एक दिन मुझे आमन्त्रित किया और अपनी हार्दिक इच्छा अभिव्यक्त करते हुए कहा 'हम चाहते हैं कि पूज्य महात्मा आनन्द भिक्षु जी की पुण्य स्मृति में यदि 'प्रार्थना सुमन भाग—२' प्रकाशित कर सकें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।' मैंने ऐसे कृतज्ञ महानुभावों की हार्दिक इच्छा की अवहेलना करना उचित नहीं समझा। अतः मैंने उनकी इस दिव्य इच्छा का स्वागत ही किया और उन्होंने आने सीमित क्षेत्र से इस के प्रकाशन में अधिक से अधिक सहयोग जो उनसे सम्भव हो सकता था, प्रदान किया। स्वर्गीय महात्मा जी के प्रति उनकी कृतज्ञता पूर्वक दी हुई हार्दिक श्रद्धा-ञ्जलि का ही परिणाम समझिये जो कि इस 'प्रार्थना सुमन भाग—२' का प्रथम संस्करण मैं आपके हाथों तक पहुँच सका। पर्याप्त समय से यह पुस्तक समाप्त थी और कई महानुभावों की इसकी माँग करने पर इसका द्वितीय संस्करण 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' की ओर से प्रकाशित हुआ। द्वितीय संस्करण के भी समाप्त होने पर अब 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' की ओर से इस का अब यह तृतीय संस्करण आपके हाथों में है।

यदि इस "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के "दशम पुष्प" प्रार्थना सुमन भाग—२ से अध्यात्म प्रिय महानुभावों को कुछ तृप्ति मिली और जीवन में कुछ आगे बढ़ने एवं ऊपर उठने की प्रेरणा मिली तो लेखक और प्रकाशक अपनी लेखनी एवं अर्थ को सार्थक समझेंगे।

• विनीत—बेदरत्न, राम प्रसाद वेदालङ्कार

समर्पण

जिस परम पिता परमेश्वर की अपार अनुकम्पा एवं अपने पूजनीय गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञान एवं आशीर्वाद से मैं यह 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' के इस दशम पुष्प 'प्रार्थना सुमन भाग-२' नामक पुस्तक का यह तृतीय संस्करण आप के कर कमलों तक पहुँचा सका, उन्हीं के पावन चरणों में मेरा यह अल्प प्रयास समर्पित है।

विनीत—

वेदरत्न, रामप्रसाद देदार्जकार

आचार्य एवं उपकुलाति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

प्रार्थना सं० १

ओ३म् प्रियं नो अस्तु विष्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ऋ० १-२६--७ ॥

अन्वयः-विष्पतिः मन्द्र वरेण्यः होता नः प्रियम् अस्तु ।
वयं स्वग्नयः प्रियाः ।

अन्वयार्थः—(विष्पतिः) प्रजाओं का स्वामी (मन्द्रः) सब को तृप्त करने वाला (वरेण्यः) वरणीय—सब के वरण करने योग्य (होता) सब को सब प्रकार के पदार्थ प्रदान करने वाला प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (नः प्रियम् अस्तु) हमें प्यारा लगने लगे, हमारे प्यार की, तृप्ति की, आनन्दानुभूति की अनुपम वस्तु बन जाये (वयं स्वग्नयः प्रियाः) हम भी सुन्दर अग्नियों वाले, उत्तम संकल्पाग्नियों वाले उसके प्रिय बन जायें ।

हे प्रभो ! इस में कोई सन्देह नहीं कि तू 'विष्पति' है, प्रजापति है, सब प्रजाओं का निष्पक्ष भाव से न्याय पूर्वक भली—भान्ति पालन—पोषण करने वाला है । इस विषय में न तो तेरा कोई अपना है और न ही तेरा कोई पराया है ।

तू "मन्द्र" है, स्वभाव से सबको हर्षित करने वाला है, हर्षित ही नहीं, प्रहर्षित करने वाला है, आनन्द विभोर करने वाला है । यह बात पृथक् है कि हम उस तेरे हर्ष, प्रहर्ष, आनन्द वा तृप्ति के भाजन बन सकें वा नहीं । यदि हम वास्तव में पात्र बन गए तो फिर तेरी अनुकम्पा से हम खिले बिना, प्रफुल्लित हुए बिना नहीं रह सकते ।

तू "वरेण्यः" है, वरण करने योग्य है, अपनाने के योग्य है, स्वीकार करने के योग्य है, अङ्गीकार करने के योग्य है, क्योंकि विश्व में तुझ सा कोई और है ही नहीं, तुझ सा दिव्य कोई है

ही नहीं, तुझ सा अनुपम कोई है ही नहीं, तुझ सा निराला कोई है ही नहीं, तुझ सा प्यारा कोई है ही नहीं, तुझ सा नया कोई है ही नहीं, तुझ सा पुराना कोई है ही नहीं, तुझ सा प्यारा कोई है ही नहीं, तुझ सा महान् कोई है ही नहीं, तुझ सा सूक्ष्म कोई है ही नहीं, तुझ सा ज्येष्ठ कोई है ही नहीं, तुझ सा श्रेष्ठ कोई है ही नहीं, तुझ सा शान्त कोई है ही नहीं, तुझ सा हितकर कोई है ही नहीं, तुझ सा शिव - कल्याणकारी कोई है ही नहीं, तुझ सा रुद्र -- भयंकर भी कोई नहीं है, परन्तु इतना निश्चित है कि तू सज्जनों के लिये ही शान्ति स्वरूप है, हितकर है, शिव है - कल्याणकारी है और दुर्जनों के लिए ही रुद्र है, भयङ्कर है।

तू 'होता' है, वास्तव में स्रच्चा होता है, जो कुछ भी तू उत्पन्न करता है, चाहे वह अन्न फल, मेवे आदि खाद्य पदार्थ हों वा दुग्ध जल, रस आदि पेय पदार्थ हों वा मधु आदि लेह्य पदार्थ हों वा अन्य स्वर्ण, रजत और रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ हों उन सब को उत्पन्न करके तू हम जीवों को ही दे डालता है, इसलिए कि हम सब प्रकार से सुखी हों। कुछ भी तो तू अपने लिये शेष नहीं रखता। सब के सब फल, सब के सब अन्न, सब के सब पेय, सब के सब रत्न आदि रमणीय पदार्थ तू हमें ही तो दे डालता है। किन्ना है विशाल हृदय आपका, कितना है अनुपम हृदय तुझ विश्वपति-प्रजापति का ! तभी तो सभी सांसारिक राजा - महाराजा तेरे सामने अपने आप को हीन अनुभव करते हुए तेरे प्रति प्रह्वीभूत होते रहते हैं। हे अद्वितीय परमेश्वर ! तू ऐसा हर्ष प्रदाता है, प्रहर्ष प्रदाता है, आनन्द प्रदाता है कि तेरे सम्मुख

अन्य सब का हर्ष, प्रहर्ष फीका पड़ जाता है । ऐसा विचित्र है तू, ऐसा वरणीय है तू परमेश्वर कि जिस साधक—ध्यानी योगी के सम्मुख तू एक बार आ जाये, जिस साधक के अनुभव में तू एक बार समा जाये, जिस ऋषि देवता का तू एक बार वरणीय बन जाए, तो फिर उस ध्यानी, योगी, साधक, ऋषि देवता के हृदय में किसी अन्य को देखने, किसी अन्य को सुनने, किसी अन्य को अपनाने, किसी अन्य को वरण करने की अभिलाषा ही नहीं रहती । ऐसा दाता प्रदाता है तू, कि फिर किसी अन्य दाता प्रदाता के द्वार पर अलख जगाने की आवश्यकता ही नहीं रहती । क्योंकि अन्य सब दाताओं का गर्व भी तब तुम्हारे सम्मुख ही आकर चूर—चूर हो जाता है जब कि वह तुम्हारे दिव्य और विस्तृत दानों को देखते हैं । ऐसा तू सब प्रजा का पालन करने हारा परम पिता परमेश्वर हमारा प्रिय हो जाये, हमारे प्यार की, तृप्ति की अद्भुत वस्तु बन जाये । अर्थात् हमें तू ऐसा प्यारा लगने लगे या तुझ को वरण करने और अपनाने में हमें ऐसी तृप्ति मिलने लगे, हमें ऐसा आनन्द मिलने लगे कि जिससे हम झूम जायें, जिससे हम विभोर हो जायें । वंसी तृप्ति फिर जग में अन्यत्र न कहीं खाने में, न पीने में, न पहनने में, न ओढ़ने में, न सुनने में, न सूँघने में, न स्पर्श करने में और न ही अन्य किसी प्रकार के भोग-विलास में मिल सके ।

हे सब का कल्याण करने वाले पावन परमेश्वर ! इस में कोई सन्देह नहीं कि यह सब कुछ होगा अर्थात् तू हम पर अनुग्रह करेगा, तू हमें सब प्रकार से तृप्त करेगा, आनन्द विभोर करेगा, पर कब ! जब कि (वयम्) हम भी तेरे (प्रियाः) प्रिय बन्त जायें, तेरे प्यारे बन्त जायें, तेरे प्यारे और आशीर्वाद के

सच्चे पात्र बनकर तुझको अपनी ओर आवर्जित करने वाले बन जायें। अब हम आप के प्रिय तो तब ही बन सकते हैं जब कि हम “स्वर्गनयः” बन जायें, सुन्दर गङ्गाल्पार्श्वियों वाले बन जायें, उत्तम ज्ञान प्रकाश से सम्पन्न विचारों वाले बन जायें, तथा तदनुसार उत्तम आचर, आहार और व्यवहार वाले बन जायें। यदि हम ऐसे बन जायेंगे तो हमें विश्वास है कि फिर हम अवश्य तेरे प्रिय भी बन जायेंगे तेरे प्यार और आशीर्वाद के सच्चे पात्र भी बन जायेंगे।

हे प्यारे और सब जग में तूारे परमेश्वर ! इस प्रकार जब इधर तुम हमारे प्रिय बन जाओगे, तुम हमारे प्यारे बन जाओगे, और उधर हम तेरे प्रिय बन जायेंगे तो तब वह कितना सौभाग्यमय महासौभाग्यमय अवसर होगा। वास्तव में उस समय हम आप को पाकर तब तृप्त हो रहे होंगे और तू हमारे उत्तम जीवन को देख-देख कर हम पर तृप्त-प्रसन्न हो रहा होगा। प्रभुवर ! न जाने जीवन में कब आयेंगी ऐसी सौभाग्यशालिनी घड़ियाँ ? हे परमेश्वर ! हमें शक्ति दे, हमें भक्ति दे हमें अपने प्रति अनुराग दे तथा तदनुसार निरन्तर आगे बढ़ने और ऊँचा चढ़ने की सामर्थ्य दे, ताकि हम तेरे अनुपम प्यार और आशीर्वाद के सच्चे पात्र बन सकें, तेरे परम आनन्द के भाजन बन सकें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



प्रार्थना सं० २

ओ३म् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे
देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।

अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ यजु ३-१७ ॥

अन्वयः-अग्ने ! तनूपाः असि, मे तन्वं पाहि । अग्ने !
आयुर्दाः असि, मे आयुः देहि । अग्ने ! वर्चोदाः असि, मे वर्चः
देहि । अग्ने ! यत् मे तन्वाः ऊनं तत् मे आपृण ।

अन्वयार्थः- (अग्ने ! तनूपाः असि) हे ज्ञान स्वरूप
जगदीश्वर ! तू शरीर—रक्षक है, इसलिए (मे तन्वं पाहि)
तू मेरे शरीर की रक्षा कर (अग्ने ! आयुर्दाः असि) हे प्रकाश-
स्वरूप परमेश्वर ! तू जीवन दाता है, इसलिए (मे आयुः देहि)
मुझे जीवन दे । (अग्ने ! वर्चोदाः असि) हे देवीत्यमान दिव्य
देव ! तू दीप्ति अर्थात् आन्तरिक तेज का दाता है, इसलिए
(मे वर्चः देहि) मुझे दीप्ति — आन्तरिक तेज प्रदान कर ।
(अग्ने ! यत् मे तन्वाः ऊनं) हे सब प्रकार से अग्रणी और
सब के मार्ग प्रदर्शक प्रभो ! जो मेरे शरीर में न्यूनता है (तत् मे
आपृण) उस मेरी न्यूनता को तू पूर्ण कर ।

हे अग्ने ! हे ज्ञान प्रकाश के पुंज परमेश्वर ! तू ने मुझे
इस ससार में सुख पूर्वक जीने के लिये, सुख पूर्वक निवास
करने के लिये यह सुन्दर शरीर रूपी धाम प्रदान किया है ।
मेरे इस देह धाम के ६ द्वार हैं और सभी बड़े सुन्दर और
उपयोगी हैं ।

यह देह रूपी सदन बहुत ही निराला है । ऐसा सदन भला
तेरे अतिरिक्त और कौन गढ़ सकता है, और कौन रक्ष सकता

प्रार्थना सुमन भाग २

(१२)

है ? यह चलता फिरता घर है । यह बहुत मुन्दर घर है । यह बहुत प्यारा घर है । इस में व्यक्ति अघाता नहीं, तभी तो इस में सुदीर्घ काल तक बना रहना चाहता है । यह जीव को इतना प्यारा लगता है कि इसमें एक बार घुसकर फिर यह इसमें से निकलना चाहता ही नहीं । यहाँ तक कि यह घर अत्यन्त पुराना पड़ जाता है, जोर्ण - शीर्ण हो जाता है तो भी जीव इस को छोड़ना नहीं चाहता ।

इस शरीर रूपी घर के दो द्वारों से जीव संसार भर के पदार्थों के स्वरूपों को देखता है, दो द्वारों से संसार भर के शब्दों को सुनता है, दो द्वारों से श्वास - प्रश्वास लेता है, एक 'मुख' रूप द्वार से भोज्य एवं पेय आदि पदार्थों को ग्रहण करता है, अन्य दो द्वारों (गुदा एवं उपस्थ) से देह गत मल - मूत्र का विसर्जन करता है । यों तो अन्य द्वार हैं, छिद्र हैं, जिनमें से स्वेद - पसीने के रूप में शरीर से मल का विसर्जन होता रहता है, परन्तु मुख्य ये ६ ही हैं । इस शरीर रूपी घर को तेरी व्यवस्था के अनुसार प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान और कृकल, देवदत्त, धनञ्जय आदि सुव्यवस्थित रूप से चलाते रहते हैं । तेरी कृपा से अन्तःकरण चतुष्टय - मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के द्वारा सारा शरीर अपना कार्य निर्बाध रूप से करता रहता है ।

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! इन प्राणादि से सुव्यवस्थित होते हुए भी, तू ही 'तनूपाः' तू हो तन का रक्षक है, तू ही शरीर का रक्षक है । अतः तू मेरे तन की भी रक्षा कर ।

हे प्रभुदेव ! यदि तू 'तनूपाः' तन का रक्षक नहीं होता तो तन की रक्षा-सुरक्षा के लिये वेदों में नाना प्रकार के विधि विधान कैसे बनाता ! गुणवि तू शरीर का रक्षक नहीं होता वा

उसकी रक्षा नहीं करना चाहता होना, तो शरीर की रक्षा के लिये नियम पूर्वक भ्रमण, नियम पूर्वक खाद्य एवं पेय पदार्थों के सेवन करने का आदेश क्यों देता ! फिर यदि तू 'तनूपाः' नहीं होता, तो हमें पग-पग पर जीवन में तन की रक्षा करने की सत्प्रेरणा क्यों देता ! प्रातः जाग्रण, प्रातः भ्रमण आदि के विधि - विधान क्यों बनाता ! यदि तू तन की रक्षा नहीं करना चाहता होता, तो उसके पालन - पोषण के लिये ये अन्न फल, दुग्ध आदि खाद्य एवं पेय आदि पदार्थ क्यों प्रदान करता ! यदि तू तन की रक्षा नहीं करना चाहता होता, तो रोगग्रस्त होने पर इस को नीरोग करने के लिये वेदों में नानाविध चिकित्सा विज्ञानों का नाना प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का प्रकाश क्यों करता, ओर संसार में नाना प्रकार की औषधियाँ क्यों उत्पन्न करता ! अतः हृदय कृतज्ञ होकर स्वीकार करता है कि तू वास्तव में 'तनूपाः' है, हर दृष्टि से तन का रक्षक है, तभी तो मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ कि 'तू मेरे शरीर की रक्षा कर ।' तू मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं तेरे सदुपदेशों के आधार पर, तेरी सत्प्रेरणाओं के आधार पर ऐसा जीवन व्यतीत करूँ जिससे कि मेरे शरीर की रक्षा होती रहे ।

हे प्रकाशस्वरूप प्रभुवर ! तू 'आयुर्दाः' है, जीवन दाता है, दीर्घायु प्रदान करने वाला है, तभी तो मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे जीवन दो, दीर्घायु प्रदान करो ।

प्रभुदेव ! यदि तू 'आयुर्दाः' न होता, तो कौन मन में यह भाव भर कर तेरे दर पर अलख जगाता और यह कहता कि 'हे प्रभो ! मुझे आयु दो' । अब जब - तू 'आयुर्दाः' है, तू आयु-जीवन प्रदान करने वाला है, इसलिये ही तो तू दीर्घायु प्रदान

करने वाले, जीनव प्रदान करने वाले दुग्ध - घृत - नवनीत, बाताद वादाम) आदि - आदि आयुवर्धक नानाविध साधन प्रदान करता है, फिर स्वच्छ निर्मल वायु में प्रातः भ्रमण आदि का विधान करता है । इस के अतिरिक्त अन्य भी अनेक स्वास्थ्य और दीर्घायु के नियमों का तू उपदेश देता है । ताकि हम तदनुसार आचरण करके अपने आपको चिरायु कर सकें, अपनी आयु को दीर्घायु में परिवर्तित कर सकें ।

हे अग्ने ! ज्ञान के अनुपम स्रोत पमेश्वर ! तू 'वर्चोदा' है, मुझे वर्चः-दीप्ति प्रदान कर । हे तेजोरूप प्रभो ! तू 'वर्चोदा' है, दीप्तिदा है, तेजोदा है । ये सारे अन्न आदि खाद्य एवं दुग्धादि पेय पदार्थ जो तू ने उत्पन्न किए हैं, ये जो औषधियाँ तू ने उत्पन्न की हैं, ये जो फल - फूल आदि तू ने उत्पन्न किए हैं, वे सब इसलिए ही तो पैदा किये हैं कि तेरे ये पुत्र वर्चस्वी बनें, तेजस्वी बनें, तेरी ये पुत्रियाँ दीप्तिमयी बनें, वर्चस्विनी बनें । इस में कोई सन्देह नहीं कि तेरे बनाए हुए विधि - विधानों के अनुसार जब हम चलते हैं तो निःसन्देह हमारे तन भी सुरक्षित होते हैं, हमारी आयु भी बढ़ती है, हमारा तेज भी बढ़ता है हमारा शरीर भी पुष्ट होता है । इस प्रकार हम सुदीर्घ जीवी होते हैं । सुदीर्घ जीवी होकर भी हम जीवन में तेजस्वी वर्चस्वी और ओजस्वी बने रहते हैं ।

ऐसा होने पर भी हे ज्ञानस्वरूप प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! कभी चाहे अनचाहे वा जाने अनजाने किसी न किसी कारण वश वा किसी न किसी परिस्थिति वश मेरे मन में, मेरे तन में त्रुटि आ जाती है, न्यूनता आ जाती है या कभी मैं काम क्रोध आदि का शिकार हो जाता हूँ और उसके परिणाम स्वरूप मेरा तन, मन अपनी दिव्य शक्ति, शान्ति एवं सुख आदि से

वंचित होकर नीरस, निर्बल और निराश हो जाता है, उस समय जब मेरा देहबल घट जाता है, मेरा मनोबल घट जाता है, तो फिर तब मेरा आत्मबल भी घट जाता है। इसीलिए हे तेज, प्रकाश और अद्भुत बलों के स्रोत प्यारे प्रभुवर ! मैं तेरी शरण में उपस्थित होता हूँ, तेरे चरणों में नम्रता पूर्वक आता हूँ, तेरी उपासना करता हूँ, और तब तू फिर मुझे कृपालु होकर-दयालु होकर उभार लेता है, मुझे काम क्रोध आदि राक्षसों के चंगुल से बचा लेता है, मुझे दुःखों और पीड़ाओं से, कष्टों और बलेशों से पृथक् कर लेता है। इस पर तब मैं सुखी होने लगता हूँ, तृप्त होने लगता हूँ और फिर पुनः मेरा शारीरिक बल बढ़ने लगता है, मनोबल बढ़ने लगता है। मैं फिर शनैः शनैः तेजस्वी, वर्चस्वी, ओजस्वी और मनस्वी बनने लगता हूँ। उस समय मुझे सहज ही अनुभव होने लगता है कि मैं अब दीर्घायु वाला होकर अपने लोक और परलोक को बना सकने में समर्थ हो सकूँगा। अतः प्रभुवर ! मैं तेरे पावन चरणों में श्रद्धा पूर्वक उपस्थित होकर, पूर्ण पुष्पार्थ पूर्वक उपस्थित होकर यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुझ से दूर हो जाने पर, तुझ से विमुख हो जाने पर और संसार में अति रम जाने पर जो मेरे शरीर में वृद्धि आ गई है, जो मेरे शरीर में दुर्बलता आ गई है, जो मेरे मन में स्थूलता आ गई है, जो मेरे मन में निर्बलता आ गई है, जो मेरे मन में नीरसता आ गई है, जो मेरे मन में उदासी छा गई है वा जो मेरे आत्मा में निर्बलता आ गई है, उस सब को तू घूर दे, उस सब को तू अपनी अगार अनुकम्पा से पूर्ण कर दे,

प्रार्थना सुमन भाग २

(१६)

ताकि मैं पुनः अपने शरीर से सशक्त होकर, अपने मन से समर्थ होकर अपने आत्मा से सबल होकर सुदृढ़ रूप में स्थिर होकर इस लोक के वास्तविक सुख को भोग सकूँ तथा आध्यात्मिक-अलौकिक आनन्द को भी प्राप्त कर सकूँ ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

— ० —

प्रार्थना सं० ३

ओ३म् आत्वा रम्भं न जिग्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थे आ ॥ ऋ० ८-४५-२० ॥

अन्वयः- शवसस्पते ! जिग्रयः रम्भं न त्वा आररम्भ ।
त्वा सधस्थे आ उश्मसि ।

अन्वयार्थः- (शवसस्पते !) हे सर्वविध बलों के स्वामी परमेश्वर ! (जिग्रयः रम्भं न त्वा आररम्भ) वृद्धजन - वृद्धे मनुष्य जैसे लाठी का आश्रय लेते हैं वैसे ही हम तुम्हारा आश्रय लेते हैं । (त्वा सधस्थे आ उश्मसि) अब हम तुझ को अपने सह स्थान में अर्थात् सदा समीप में ही देखना चाहते हैं, सदा समीपस्थ अनुभव करना चाहते हैं ।

(शवसस्पते !) हे इन्द्र परमेश्वर ! तू शवसस्पति है, सब प्रकार के बलों का स्वामी है । देहबल, बुद्धिबल, मनोबल और आत्मबल आदि सभी बल आप के आधीन होकर रहते हैं । सभी बलों का अद्वितीय स्रोत तू ही तो है । तुझ से ही तो सभी बल प्रवाहित होते रहते हैं । तू ही तो सब को शारीरिक बल देता है, मनोबल देता है, बौद्धिक बल देता है, आत्मबल देता है । हे बलाधिपति प्यारे प्रभो ! यदि तू इन बलों को न देता होता तो तेरा नाम वेदों के अनुसार 'बलदाः' और आत्मदाः कैसे होता ? यदि तू तेजस्वी न होता, तो कौन तुझे 'रतेजोसि'

१- य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते ॥ यजु० २५-१३ ॥

२- तेजोसि तेजो मयि धेहि ॥ यजु० १६-६ ॥

तू तेजः स्वरूप है, यह कहता ? यदि तू दूसरों को तेज न प्रदान करता, तो कौन तुझ से प्रार्थना करता कि- "तेजो मयि धेहि" तू मुझ में तेज भर कर मुझे तेजस्वी बना । यदि तू वीर्यवान् न होता, सामर्थ्यवान् न होता, और अपने सम्पर्क में आने वाले को वीर्यवान् — सामर्थ्यवान् न बनाता तो कौन तुझ को 'वीर्यमसि' तू वीर्यवान् है, सामर्थ्यवान् है, "वीर्य मयि धेहि" वीर्य - सार्थ्य मुझ में धारण कर, यह प्रार्थना करता ? यदि तू बलवान् न होता और शरण में आए हुए को बल न प्रदान करता, तो कौन तुझे 'बलमसि' तू बलस्वरूप है, यह कह कर 'बलं मयि धेहि' तू बल मुझ में धारण कर, यह प्रार्थना करता ? ऐसे ही तू यदि ओजस्वी न होता, मन्युमान् न होता, और सहस्वरूप न होता, तथा अपनी शरण में आने वाले और प्रार्थना करने वाले को ओजस्वी न बनाता, मन्युमान्-स्वाभिमानि न बनाता और कठिनाईयों को सहन करने वाला वा उनका जमकर सामना करने वाला एवं उन पर विजय पाने के लिए साहसी न बनाता तो कौन तुझ को 'ओजोसि, मन्युरसि, सहोसि - तू ओजरूप, मन्युरूप और सहरूप है, यह कहकर तुझ से 'ओजो मयि धेहि, मन्यु मयि धेहि, सहो मयि धेहि, तू मुझ में ओज भर, तू मुझ में मन्यु - दुराईयों के प्रति रोष भर, तू मुझ में सहनशीलता भर इत्यादि, यह प्रार्थना करता ?

इन सर्वविध बलों का, सामर्थ्यों का तू अधिपति है, इस लिए ही तेरे दर पर आकर तुझ से सब प्रार्थना करते हैं कि- तुम हमें बल प्रदान करो, तुम हम में बल भरो, तुम हम में साहस भरो, तुम हमें तेज भरो, तुम हम में सामर्थ्य भरो, तुम हम में शक्ति भरो, तुम हम में मन्यु भरो, तुम हम में ओज भरो, तुम हम में सहनशीलता भरो, इत्यादि ।

हे बलाधिपति परमेश्वर ! (जिघ्रयः रम्भं न त्वा आररम्भ)
जैसे इस संसार में बृद्धजन - बूढ़े मनुष्य जब लड़खड़ाने लगते हैं, जब वे अपने सहारे से चल नहीं सकते हैं, जब वे स्वयं भली-भान्ति कहीं खड़े रह नहीं सकते हैं, जब वे अपनी बाधाओं का स्वयं निवारण नहीं कर सकते हैं, तो तब वे सब प्रकार से हार कर अन्त में लाठी का साहरा लेते हैं। तब उस लाठी के सहारे वे भली - भान्ति खड़े हो जाते हैं, उस लाठी के आश्रय वे ऊँची - नीची भूमि को जान लेते हैं, और तदनुसार अपना पग उँचा - नीचा करके धर सकते हैं। समय आने पर झाड़-झट्टाड़ और हानिकारक तत्वों अर्थात् कुक्कुर, सर्प आदि प्राणियों का भी वे इस डण्डे से निवारण कर सकते हैं, इत्यादि।

हे पावन परमेश्वर ! हे बलों के भण्डार जगदीश्वर ! उस बृद्ध के समान हम भी सब प्रकार से अब निर्बल हो गए हैं, अर्थात् शरीर से अब हम शिथिल हो गये हैं, दुर्बल हो गये हैं, मनोबल भी अब हमारा समाप्त हो चुका है, आत्मबल से भी अब हम विहीन हो चुके हैं, बुद्धि भी अब हमारा साथ नहीं देती, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ भी अब हमारी ऐसी डगमगाने लगती हैं कि अब हम दृढ़ होकर कहीं खड़े ही नहीं रह सकते ---।

हे निर्बलों के बल ! हे निस्सहायों के परम सहाय ! हे सामर्थ्यहीनों के लिए परम सामर्थ्य के स्रोत ! हे तेजोहीनों के लिए तेजः पुंज ! ओजो-हीनों के लिए ओजः प्रदाता प्रभुवर ! हे निराश्रयों के परम आश्रय भगवन् ! हमें हर प्रकार से जान हो गया है कि ऽतुश्च इन्द्र-परमेश्वर के बिना मनुष्य अपनी
१ यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

ऋ० २-१२-६ ॥

प्रार्थना मुमन भाग २

(१८)

तू तेजः स्वरूप है, यह कहता ? यदि तू दूसरों को तेज न प्रदान करता, तो कौन तुझ से प्रार्थना करता कि- “तेजो मयि धेहि” तू मुझ में तेज भर कर मुझे तेजस्वी बना । यदि तू वीर्यवान् न होता, सामर्थ्यवान् न होता, और अपने सम्पर्क में आने वाले को वीर्यवान् — सामर्थ्यवान् न बनाता तो कौन तुझ को ‘वीर्यमसि’ तू वीर्यवान् है, सामर्थ्यवान् है, “वीर्य मयि धेहि” वीर्य - सार्थ्य मुझ में धारण कर, यह प्रार्थना करता ? यदि तू बलवान् न होता और शरण में आए हुए को बल न प्रदान करता, तो कौन तुझे ‘बलमसि’ तू बलस्वरूप है, यह कह कर ‘बलं मयि धेहि’ तू बल मुझ में धारण कर, यह प्रार्थना करता ? ऐसे ही तू यदि ओजस्वी न होता, मन्युमान् न होता, और सहस्वरूप न होता, तथा अपनी शरण में आने वाले और प्रार्थना करने वाले को ओजस्वी न बनाता, मन्युमान्-स्वाभि-मानी न बनाता और कठिनाईयों को सहन करने वाला वा उनका जमकर सामना करने वाला एवं उन पर विजय पाने के लिए साहसी न बनाता तो कौन तुझ को ‘ओजोऽसि, मन्युरसि, सहोऽसि - तू ओजरूप, मन्युरूप और सहरूप है, यह कहकर तुझ से ‘ओजो मयि धेहि, मन्यु मयि धेहि, सहो मयि धेहि, तू मुझ में ओज भर, तू मुझ में मन्यु - दुराईयों के प्रति रोष भर, तू मुझ में सहनशीलता भर इत्यादि, यह प्रार्थना करता ?

इन सर्वविध बलों का, सामर्थ्यों का तू अधिपति है, इस लिए ही तेरे दर पर आकर तुझ से सब प्रार्थना करते हैं कि- तुम हमें बल प्रदान करो, तुम हम में बल भरो, तुम हम में साहस भरो, तुम हमें तेज भरो, तुम हम में सामर्थ्य भरो, तुम हम में शक्ति भरो, तुम हम में मन्यु भरो, तुम हम में ओज भरो, तुम हम में सहनशीलता भरो, इत्यादि ।

हे बलाधिपति परमेश्वर ! (जिःयः रम्भं न त्वा आररम्भ)
जैसे इस संसार में वृद्धजन - बूढ़े मनुष्य जब लड़खड़ाने लगते हैं, जब वे अपने सहारे से चल नहीं सकते हैं, जब वे स्वयं भली-भान्ति कहीं खड़े रह नहीं सकते हैं, जब वे अपनी बाधाओं का स्वयं निवारण नहीं कर सकते हैं, तो तब वे सब प्रकार से हार कर अन्त में लाठी का साहारा लेते हैं। तब उस लाठी के सहारे वे भली - भान्ति खड़े हो जाते हैं, उस लाठी के आश्रय वे ऊँची - नीची भूमि को जान लेते हैं, और तदनुसार अपना पग उँचा - नीचा करके धर सकते हैं। समय आने पर झाड़-झड्काड़ और हानिकारक तत्वों अर्थात् कुक्कुर, सर्प आदि प्राणियों का भी वे इस डण्डे से निवारण कर सकते हैं, इत्यादि।

हे पावन परमेश्वर ! हे बलों के भण्डार जगदीश्वर ! उस वृद्ध के समान हम भी सब प्रकार से अब निर्वल हो गए हैं, अर्थात् शरीर से अब हम शिथिल हो गये हैं, दुर्बल हो गये हैं, मनोबल भी अब हमारा समाप्त हो चुका है, आत्मबल से भी अब हम विहीन हो चुके हैं, बुद्धि भी अब हमारा साथ नहीं देती, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ भी अब हमारी ऐसी डगमगाने लगती हैं कि अब हम दृढ़ होकर कहीं खड़े ही नहीं रह सकने ---।

हे निर्वलों के बल ! हे निस्सहायों के परम सहाय ! हे सामर्थ्यहीनों के लिए परम सामर्थ्य के स्रोत ! हे तेजोहीनों के लिए तेजः पुंज ! ओजो-हीनों के लिए ओजः प्रदाता प्रभुवर ! हे निराश्रयों के परम आश्रय भगवन् ! हमें हर प्रकार से जान हो गया है कि शत्रुश्च इन्द्र-परमेश्वर के बिना मनुष्य अपनी
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

ऋ० २-१२-६ ॥

बाधाओं को कभी हटा नहीं सकते, अपनी आने वाली कठिनाईयों पर कभी विजय पा नहीं सकते, तभी तो परस्पर संघर्ष करते हुए, परस्पर युद्ध करते हुए दानों ओर के मनुष्य अपनी-अपनी रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं। इसलिए हम भी तुझ को अपना परम बल मान कर तेरा आश्रय लेते हैं। वृद्धजन जैसे लाठी-हाथ में लेने पर पग - पग पर गिरने से फिर बच जाते हैं, ऐसे ही हम तेरा आत्मबल पाकर, तेरा सहारा पाकर कदम - कदम पर डगमगाने, पग - पग पर डावाँडोल होने से और स्थान-स्थान पर गिरने से, पतित होने से सहज ही बच जायेंगे।

हे बलों के भण्डार प्रभुवर ! जेमे वृद्धजन लाठी को पाकर जग में खड़े हो जाते हैं, स्थिरता से खड़े होकर दृढ़ता से अपनी बात को कह सकते हैं, अपने अन्य सर्वविध व्यवहारों को भी निश्चलता से निर्वहन कर सकते हैं, ऐसे ही हमें भी विश्वास है कि तुम्हारा सहारा पाकर हम भी संसार में निश्चल होकर खड़े हो सकेंगे, बिना डगमगाए और बिना डावाँडोल हुए - हुए स्थिरता पूर्वक अपने सर्वविध क्रिया-कलापों को निभा सकेंगे। जैसे जगत में वृद्ध जनों को कुक्कुर, वानर आदि हानिकारक तत्व सामने दिखाई देते हैं तो जहाँ वे अपना डंडा उठा लेते हैं वहाँ वे सब बाधक तत्व भाग जाते हैं। ऐसे ही हे प्रभुवर ! जहाँ सबको यह ज्ञात हो जायेगा कि हम ने सब से बड़े सहारे तुझ परमेश्वर को अपना लिया है, तुझ दिव्य देव का आश्रय ले लिया है, तो फिर ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि हानिकारक तत्व हमें हैरान और परेशान नहीं कर सकेंगे, तथा न ही ये तब हमारी राह में रुकावट बन

सकेंगे । तब तो तेरे सहारे हम सब प्रकार से निश्चिन्त और निर्बाध रूप से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकेंगे । इसलिए हे ब्रह्माधिपति परमेश्वर्यावान् प्रभो ! (त्वा सद्यस्ये आ उश्मसि) हम तुझे सदा अपने सद्यस्थ में, अपने सह स्थान में, अपने सन्निकट ही देखना चाहते हैं, जैसे कि वृद्धजन सदा अपनी आश्रय रूप लाठी को अपने समीप पड़ी रहती हुई देखना चाहते हैं ।

127963

हे सब से ज्येष्ठ और सब से श्रेष्ठ दिव्य आलम्बन रूप परमेश्वर ! अब जैसे वृद्धजन सदा अपनी लाठी को अपने समीप ही वर्तमान हुई-हुई देखना चाहते हैं वैसे ही हम भी आपकी याम चौबीसों घंटे आप को अपने समीप वर्तमान हुआ - हुआ देखना चाहते हैं, सर्वदा आप को अपने सन्निकट विराजमान हुआ-हुआ अनुभव करना चाहते हैं । क्योंकि जिस तुझ प्रभु के सहारे हम ने भयङ्कर से भयङ्कर विचारों से छुटकारा पाया हुआ है और उनके परिणाम स्वरूप होने वाले कष्ट - क्लेशों से मुक्ति पाई है, तथा तेरी कृपा से इतना सुख - सौभाग्य पाया है, उस परम सम्बल को-उस परम प्रिय आश्रय को भला अब हम कब अपनी दृष्टि से ओझल होता हुआ देख सकते हैं, भला अब हम कब अपनी अनुभूति से तिरोहित होता हुआ सह सकते हैं ? हे नाथ ! जैसे हम इस जगत् में देखते हैं कि वृद्धजन सो रहे होते हैं तो भी उनके सिराहने लाठी पड़ी रहती है । उस लाठी रूप आश्रय में वे निश्चिन्त होकर मस्ती से सो रहे होते हैं, यह सोच कर, कि “जब हम प्रातः उठेंगे तो फिर यह लाठी हमारा सहारा बनेगी और सब प्रकार से हमारे कार्यों को मुख पूर्वक वहन करने में सहायक होगी ।” सो हे परम पावन परमेश्वर !

इम वृद्ध की लाठी के समान तुम हमारे सिराहने सदा बर्तमान रहो. क्योंकि तुम परम आश्रय के आश्रय में ही हम सदा निश्चिन्त हो कर चैन की नींद सो सकते हैं और जहाँ फिर प्रातः काल उठकर आपको अपने सिराहने निहारते हैं वहाँ फिर हम एक दम निहाल हो जाते हैं ।

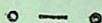
हे बलों के बल ! हे नाथों के नाथ ! हे आश्रयों के आश्रय प्यारे प्रभुदेव ! इतना सहारा देकर, इतना स्नेह और बल देकर अब तू हमारे सामने से ओझल मत होना, हम से दूर मत होना, हम से पृथक् मत होना, क्योंकि हमें भय है कि जहाँ तू हम से ओझल हुआ, जहाँ तू हम से पृथक् हुआ. तो जैसे जहाँ बूढ़े की लाठी हटी वहाँ फिर वह लड़खड़ाया, ठोकर खाया. गिरा और कुत्तों आदियों ने उस को आ घेरा इत्यादि. ठीक वैसे ही तेरा सहारा छूटने ही. तेरे ओझल होने ही हम भी फिर लड़खड़ा जायेंगे, डगमगा जायेंगे, डावाँडोल हो जायेंगे. पग-पग पर गिरने लगेंगे पग-पग पर पतित होने लगेंगे, काम, क्रोध, आदि पागल कुत्ते फिर हमें हैरान और परेशान करने लगेंगे, फिर हमें काटने के लिए दौड़ने लगेंगे । अतः हम आप से प्रार्थना करते हैं कि आप सदा हमारे सम्मुख बने रहें, आप सदा हमारे सन्निकट बने रहें, क्योंकि आपके सन्निकट रहने से, आप के परम पवित्र दिव्य आश्रय से हमारा शरीर खड़ा रहेगा, उस का बल बना रहेगा, मन खड़ा रहेगा, उस का बल बना रहेगा, उस की शान्ति बनी रहेगी, आत्मा निश्चल रहेगा, स्थिर, निश्चिन्त एवं एकाग्र हो कर तेरा अनुग्रह प्यार और आशीर्वाद पाकर सदा आनन्द विभोर रहेगा । अतः हे बलाधपति, आनन्द के अनुग्रह धाम, परम

प्रार्थना मुमन भाग २

(२३)

आलम्बन प्रभुवर ! आप सदा हमारे समीप ही बने रहना;
ऐसे, जैसे कि वृद्धों का सहारा उनकी लाठी सदा उनके समीप
विद्यमान रहती है । नाथ यही है प्रार्थना, यही है अभ्यर्थना,
यही है याचना, स्वीकार करो और हमारा सब प्रकार से
उद्धार करो ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्ति ॥



प्रार्थना सं० ४

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।

त्वामवस्पुराचके ॥ यजु० २१-१ ॥

अन्वयः वरुण ! अवस्युः त्वाम् आचके । मे इमं हवं श्रुधि, अद्य च मृडय ।

अन्वयार्थः—(वरुण ! अवस्युः त्वां आचके) हे वरुण ! मैं हृदय से अपनी रक्षा चाहता हुआ तुझ को पुकारता हूँ. तुझ को चाहता हूँ, तुझ से प्रार्थना करता हूँ । (मे इमं हवं श्रुधि) तू मेरी पुकार को सुन, तू मेरी इस प्रार्थना को सुन (अद्य च मृडय) और आज मुझे सुखी कर ।

हे वरुण ! तू अपनी शरण में आये हुए उपासकों को दुर्गुण - दुर्व्यसनों से दूर करता रहता है । तू सब को रात्रि-न्दिवं सत्प्रेरणायें दे - दे कर, सद्बुद्धि दे - दे कर, निरन्तर कुमार्ग से पृथक् करता रहता है । इस प्रकार शनैः शनैः जब उपासक तुझ से प्रेरणा पा-पा कर अपने आप को धो - धो कर साफ-सुथरा, निर्मल और निष्पाप बना लेता है, तो हे वरणीय प्रभो ! तब तू उसके सिर पर अपना वरदहस्त रख देता है, अर्थात् तू उसे शाबाश देने लगता है, उसे सर्वत्र स्नेह, सम्मान और सहयोग देने लगता है ।

हे प्यारे वरुण ! इतना ऊँचा उठ जाने पर भी तेरा भक्त, तेरा उपासक संसार के मान - सम्मान में, जगत के सेवा-सत्कार में न फँसकर, न रम कर, निरन्तर तेरी ही लो लगाए रहता है । अर्थात् उसे संसार के मान - सम्मान की अपेक्षा, सेवा - सत्कार की अपेक्षा एकान्त में तुझ से प्राप्त होने वाला स्नेह और आशीर्वाद अधिक भाता है, तुझ से मिलने वाली तृप्ति

और आनन्द अधिक भाता है। तात्पर्य यह है कि वह तुझे ही चाहता है, तुझ में ही रमना चाहता है, तुझ में ही लीन रहना चाहता है, तुझ में ही सदा समाहित रहना चाहता है। इस पर तब है सर्वश्रेष्ठ परम पवित्र परमेश्वर ! तू उसे अपना लेता है, तू उसे अपने में समाहित कर लेता है। समाहित करके तू उसे आनन्द विभोर कर देता है, तू उसे सब प्रकार से परितृप्त कर देता है, तू उसे निहाल कर देता है।

हे पापापवारक दोषनिवारक गुणधारक वरणीय प्रभो ! (अवस्युः त्वाम् आचके) मैं तेरा उपासक आत्मना अपने रक्षण-संरक्षण की कामना करता हुआ तुझ वरुण-देव को ही पुकारता हूँ। तुझ वरणीय प्रभु को ही आशा भरी दृष्टि से निहारता हूँ, क्योंकि तू ही केवल मेरा रक्षण—संरक्षण कर सकने में सर्वथा, सर्वदा समर्थ है।

हे प्रभुवर ! मैं 'अवस्युः' हृदय से यह चाहता हूँ कि मेरी पाप - तापों से रक्षा हो, अर्थात् मैं पाप - तापों से बचूँ, मैं काम - क्रोध आदि से बचूँ, मैं ईर्ष्या - द्वेष आदि से बचूँ। इतना ही नहीं, प्रभुवर ! मैं 'अवस्युः' चाहता हूँ कि मेरे जीवन में गति हो, प्रगति हो। अर्थात् मेरे जीवन में आगे बढ़ने और ऊपर उठने के लिए सदा उमंग हो, उत्साह हो। मैं सदा ज्ञानार्जन करूँ, स्वाध्याय करूँ। मैं सदा उस ज्ञान के अनुसार आचरण करूँ, व्यवहार करूँ, और इस प्रकार अपने ज्ञान और आचरण से अपने लक्ष्य को, अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकूँ।

१ अवस्युः—अव रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वास्थ्य-याचना-क्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिङ्गन-हिंसा-दान-भाग-वृद्धिषु।

हे शुद्धतम, वरण करने के योग्य प्रभुवर ! मैं 'अवस्युः' अव अर्थात् कान्ति चाहता हूँ । मेरी यह हादिक अभिलाषा है कि मुझ में कान्ति हो, शोभा हो और मेरे जीवन का प्रत्येक कर्म ऐसा हो, प्रत्येक व्यवहार ऐसा हो कि जिससे मेरी शोभा बढ़े । मैं 'अवस्युः' 'अव — प्रीति' चाहता हूँ । मैं हृदय से चाहता हूँ कि मुझे चहुँ ओर से प्रीति मिले, स्नेह मिले प्यार मिले । प्रभुवर ! इस चाहना के लिये मुझे वह शक्ति दो मुझे वह हृदय दो कि जिससे मैं स्वयं पहले दूसरों को स्नेह दे सकूँ, प्यार प्रदान कर सकूँ । हे वरुण ! मैं तृप्ति चाहता हूँ, मुझे शक्ति दो कि दूसरों से तृप्ति चाहने से पूर्व मैं दूसरों को तृप्त करना प्रसन्न करना सीखूँ । अथवा मैं तृप्ति चाहता हूँ तो मैं अपनी तृप्ति के लिए सदा ऐसे सुकर्म करूँ जिनसे आत्मा सदा तृप्ति का अनुभव करे । तात्पर्य यह है कि मैं अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने के स्थान पर आत्मा को तृप्त करने का प्रयास करूँ ।

हे वरुण ! मैं अव अवगम—जानकारी चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ कि मैं अपने उत्थान में सहायक प्रत्येक पदार्थ वा व्यक्ति को जान सकूँ, और उससे अपने लक्ष्य के प्रति अग्रसर होने के लिए पूर्ण बोध प्राप्त कर सकूँ ।

प्यारे वरुण ! मैं 'अवस्यु' अपने अभीष्ट ध्येय में प्रविष्ट हो सकूँ, उसको भली—भान्ति अपना बना सकूँ, ऐसी कृपा करो प्रभुवर । मेरे उत्थान में, मेरे अभ्युत्थान में जो विचार सहायक हों उन्हें श्रवण करने का सौभाग्य मुझे मिलता रहे । मैं अपने जीवन का सच्चा अधिष्ठाता बन कर—स्वामी बन कर अपनी सब इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रख कर इन से वेदानुसार ऐसा व्यवहार कर सकूँ कि जिससे मुझे लोक में सुख सौभाग्य मिले और परलोक में भी मेरा कल्याण हो ।

हे वरणीय दिव्य—देव ! मैं 'अवस्यु' याचना कर सकूँ, ऐसी कृपा करो। अर्थात् मुझे क्या मांगना चाहिए, क्या नहीं मांगना चाहिए, कैसे मांगना और कैसे नहीं मांगना चाहिए, फिर कितना मांगना चाहिए और कितना नहीं मांगना चाहिए यह विवेक सदा बना रहे ताकि मैं अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अधिकारी से यथोचित रूप से मांग सकूँ और उसमें पूर्ण-तया सफल हो सकूँ।

हे प्रभो ! मैं 'अवस्यु' अपने में क्रिया—क्रियाशीलता चाहता हूँ। मैं सदा क्रियाशील बना रह सकूँ, यद् मेरी प्रार्थना है। जिस जीवन में क्रिया नहीं, चेष्टा नहीं, वह जीवन नहीं प्रत्युत जीवन में ही साक्षात् मरण है। अतः मैं अपने जीवन में क्रिया चाहता हूँ, चेष्टा चाहता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि जहाँ क्रिया है, वहाँ जीवन है, जहाँ हरकत है, वहाँ बरकत है। अतः मैं हरकत कर सकूँ ताकि बरकत पा सकूँ।

हे वरुण ! मैं अब इच्छा-इच्छा वाला बनूँ। मेरे में कोई इच्छा अवश्य हो, चाहना अवश्य हो, अभिलाषा अवश्य हो, क्योंकि जिसमें चाह नहीं, इच्छा नहीं, अभिलाषा नहीं, वह क्या उठेगा ? वास्तव में जहाँ इच्छा होती है—जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी निकल आती है। अतः मुझ में आगे बढ़ने और ऊपर उठने की सदा चाह बनी रहे। इसी चाहना ने ही राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनाया, कृष्ण को योगेश्वर श्री कृष्ण बनाया, इसी इच्छा ने ही मूलशङ्कर को महर्षि दयानन्द बना दिया, मोहन दास कर्मचन्द गांधी को - बेरिस्टर गांधी का महात्मा गांधी बना दिया, बापू को जगद्वन्द्य बापू बना दिया, एक सामान्य बालक को इब्राहीमलिङ्कन बना दिया इत्यादि। अतः प्रभुवर ! मैं चाहता हूँ कि मुझ में कुछ करने और कुछ बनने की इच्छा बनी रहे-चाहना बनी रहे।

हे प्यारे प्रभुवर ! मैं अपने जीवन में दीप्ति चाहता हूँ चमक चाहता हूँ, तेज चाहता हूँ, ओज चाहता हूँ, ताकि मैं दीप्तिमान् बन सकूँ, कान्तिमान् बन सकूँ, तेजस्वी बन सकूँ, वर्चस्वी बन सकूँ ।

हे वरणीय परमेश्वर ! मैं अपने उद्देश्य की प्राप्ति चाहता हूँ । प्रभुवर ! मैं जहाँ अपने लक्ष्य के लिये जो सकूँ वहाँ उसकी प्राप्ति के लिये मुझे मृत्यु से भी भय न हो । मेरा जीवन सोद्देश्य हो, निरुद्देश्य जीने से मैं सदा बचूँ ।

हे प्रभुवर ! मैं आलिंगन कर सकूँ, सब को अपना बना सकूँ । मैं सब को अपना बनाने के लिए सब को यथोचित स्नेह-सम्मान दे सकूँ । मैं अपने मार्ग में आयी हुई बाधाओं को पैरों तले रोंधते हुए आगे बढ़ता रहूँ और ऊपर उड़ता रहूँ ।

हे शुद्धतम परमात्मन् ! मैं जीवन में दाता बन सकूँ, मैं दान कर सकूँ । मैं सब को अपना समझ कर सब की तन-मन-धन से सहायता कर सकूँ, सब के सुख-दुःखों में काम आ सकूँ । अर्थात् दूसरों का हित करने के लिए मुझ में तप — त्याग और सेवा का विचार हो और तदनुकूल व्यवहार हो ।

हे सर्वोपकारक प्रभुवर ! मैं 'विभाग' कर सकूँ, न्याय पूर्वक किसी वस्तु का विभाजन कर सकूँ, बटवारा कर सकूँ इस कार्य में मैं कभी भेद-भाव न करूँ, पक्ष-पात से कार्य न करूँ ।

हे प्रभुदेव मैं सदा वृद्धि और समृद्धि में लगा रहूँ, भूल कर भी व्यद्धि में मेरी प्रवृत्ति न हो । सदा सब को ज्ञान से, ध्यान से, विचार से, कर्म से, सत्कर्म से आगे बढ़ा सकूँ और ऊँचा उठा सकूँ ।

प्रार्थना सुमन भाग २

(६

हे वरणीय प्रभुवर ! मैं अपनी रक्षा का इच्छुक, सुख का इच्छुक, शान्ति और आनन्द का अभिलाषुक तुझ परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ, याचना करता हूँ कि तू (मे इमं हवं श्रुधि) मुझ उपासक की इस टेर को सुन, इस प्रार्थना को सुन, इस पुकार को सुन और (अद्य च मृडय) आज ही तू मुझे सुखी कर, आज ही तू मुझे शान्त कर, आज ही तू मुझे आनन्दविभोर कर ।

हे वरुण ! यह पुकार, यह प्रार्थना, न जाने मैं कब से कर रहा हूँ और निरन्तर तदनुसार प्रयत्न भी कर रहा हूँ, परन्तु आज मैं अधीर होकर हृदय की टीस के साथ यह प्रार्थना कर रहा हूँ । अतः आज मेरी इस पुकार को सुन और आज से ही मुझे सुखी कर, शान्त और तृप्त कर, सब प्रकार से निहाल कर ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

— ० —

प्रार्थना सं० ५

ओ३म् इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

ऋ० ७-३२-१६ ॥ साम० २५६ ॥

अन्वयः—इन्द्र ! नः क्रतुम् आभर, यथा पुत्रेभ्यः पिता ।
पुरुहूत ! अस्मिन् यामनि नः शिक्ष, (वयम्) जीवाः ज्योतिः
अशीमहि ।

अन्वयार्थः—(इन्द्र ! 1क्रतुम् आभर) हे परमेश्वर्य-
सम्पन्न परमेश्वर ! हमें ज्ञान दो, हमें काम दो, ऐसे (यथा पुत्रे-
भ्यः पिता) जैसे कि इस संसार में अपने पुत्रों को पिता ज्ञान
देता है, काम देता है । (पुरुहूत !) हे बहुतों से आत्मान किये
जाने वाले प्यारे प्रभो ! (अस्मिन् यामनि नः शिक्ष) इस
जीवन पथ में अर्थात् जीवन में गन्तव्य धर्म मार्ग में अथवा योग
मार्ग में हमें ऐसा शिक्षित कर कि (जीवाः ज्योतिः अशीमहि)
हम जीव इसी जीवन में ही ज्योतिः को-अध्यात्मप्रकाश को-परम-
प्रकाश का प्राप्त कर सकें ।

हे इन्द्र ! हे जगत् सम्राट् परमेश्वर तू हमें क्रतुः ज्ञान दे,
प्रज्ञान दे, वृद्धि दे सद्बुद्धि दे । इतना ही नहीं तू हमें क्रतुः-कर्म
दे, सत्कर्म दे, शुभ कर्म दे, यज्ञमय कर्म दे । हे प्यारे परमेश्वर !
तू हमें ज्ञान और कर्म ऐसे प्यार से दे जैसे कि संसार में एक
पिता अपनी सन्तान को देता है ।

१ क्रतुः—प्रज्ञा यज्ञो वा (उप० १-७६) । क्रतुः कर्म च प्रज्ञा च ।

(दयानन्द) ।

क्रतुरिति कर्म नाम Action (निघं० २-१) ।

क्रतुरिति प्रज्ञा नाम, KnowledGe or Wisdom (निघं- ३-८) ।

हे बहुतों से पुकारे जाने वाले परम पिता परमेश्वर ! तू हमें इस जीवनपथ में सदा शिक्षा देता रह, तू हमें अपने जीवन के गन्तव्य मार्ग में सदा सूझ-बूझ देता रह, अथवा तू हमें जिस पथ में अपनी सारी इन्द्रियों पर संयम करके - उनको मर्यादा में रख कर अपने विशेष उद्देश्य के प्रति अग्रसर हुआ जाता है, उस योग मार्ग में सदा ऐसी शिक्षा देता रह, ऐसी प्रेरणा देता रह, ऐसी सूझ-बूझ देता रह कि जिससे हम जीव अपने इसी जीवन में ही परम ज्योति - परम प्रकाश को प्राप्त कर सकें, अमरत्व पद को प्राप्त कर सकें ।

हे इन्द्र ! हे दिव्यैश्वर्य के भण्डार ! जगदीश्वर ! तू हमें ज्ञान दे, बुद्धि दे और बुद्धि देकर हमें काम भी तू ही दे । प्रभुवर ! मैं क्यों तुझ से प्रार्थना कर रहा हूँ ? इसलिए कि तू जो ज्ञान देगा, प्रज्ञान देगा, वह सर्वथा शुद्ध होगा, पवित्र होगा, अनुपम होगा । इतना ही नहीं, तू जो काम देगा - जो कार्य देगा, वह भी शुद्ध होगा, पवित्र होगा, दिव्य होगा । हमें विश्वास है कि तेरे दिये हुये उस ज्ञान - प्रज्ञान से जहाँ हमारी बुद्धि, मन और ज्ञानेन्द्रियाँ शुद्ध-पवित्र होंगी वहाँ तेरे दिये हुये उस कर्म—सत्कर्म—यज्ञमय शुभ कर्म से हमारी कर्मेन्द्रियाँ भी पवित्र होंगी । इन सब के शुद्ध-पवित्र होने से हमारे सब आहार, चिहार और व्यवहार भी शुद्ध-पवित्र होंगे ।

हे जगत्पति जगदीश्वर ! तू यह ज्ञान—प्रज्ञान और व सत्कर्म हमें इतने प्यार से देना जितने प्यार से इस संसार में एक पिता अपने पुत्रों को ज्ञान देता है और काम देता है । यों तो प्रभुवर ! तेरा प्यार इस पिता से भी कहीं अधिक बढ़ कर होता है, पर हम ने जो इस पिता का प्यार देखा है, हम उसी को ही बहुत समझो हुए हैं, अतः वंसी प्रार्थना कर रहे हैं ।

हे दिव्य परमेश्वर ! यह पिता तो संसार में प्रायः करके केवल इतना ही सोच पाता है कि पुत्र को ऐसा ज्ञान दिया जाये, ऐसा शिक्षण - प्रशिक्षण दिया जाये कि जिससे जीवन में आगे चल कर यह ऐसा कार्य कर सके जिससे सहज ही उसकी रोगी रोगी चल सके, उसका और उसके परिवार का आसानी से गुजारा चल सके । इस पिता का वह ज्ञान और कर्म किसी सेवा - सर्विस सम्बन्धी हो सकता है वा व्यापार सम्बन्धी हो सकता है । परन्तु हे प्रभुवर ! तेरा दिया हुआ ज्ञान और कर्म तो इस पिता की अपेक्षा भी हमारे लिये अधिक उत्कृष्टतर होगा । क्योंकि हमें विश्वास है कि तेरे प्रदत्तज्ञान और सत्कर्म - यज्ञमय कर्म आदि के माध्यम से जहाँ हमारा यह संसार सुखमय बनेगा, वहाँ हमारा परलोक भी आनन्दमय बनेगा, उससे जहाँ हमारा अभ्युदय होगा वहाँ हमारा निश्चयस भी होगा ।

हे पुरुहूत ! हे बहुतों से अपने जीवन में बुलाये जाने वाले, पुकारे जाने वाले प्यारे और सब जग से न्यारे परमेश्वर ! इस जगत् में पिता तो दो - चार पुत्रों से, दो - चार सन्तानों से ही अपनी समस्याओं में स्मरण किया जाता है वा पुकारा जाता है, परन्तु तू तो इन पिता - पुत्र अर्थात् दोनों से ही स्मरण किया जाता है, पुकारा जाता है । तू पिता-पुत्रों से ही नहीं वरन् बहुतों से-अनेकों से पुकारा जाता है, तभी तो तू सब से न्यारा है और सब से प्यारा है । हे पुरुहूत इन्द्र ! जैसे संसार में पिता पुत्रों को ज्ञान और कार्य, बुद्धि और व्यापार सौंप कर भी उनको सर्वथा भूल नहीं जाता । समय - समय पर यदि वे ऐसी कोई गलती करते हैं, ऐसी कोई त्रुटि करते हैं जिससे कि भविष्य में उनका अपमान, अपयश सम्भव हो वा कार्य - व्यापार में

प्रार्थना सुमन भाग २

(३३)

हानि सम्भव हो, तो वे झट उनको समझाते हैं, और कार्य के तौर - तरीके में परिवर्तन करने की शिक्षा देते हैं। यह समय-समय की सूझ - बूझ, यह मौके - मौके की शिक्षा, यह अवसर-अवसर का पथ - प्रदर्शन ही तो सब प्रकार से पुत्रों को ऐसा निपुण-कार्यकुशल बना देता है कि फिर वे सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगते हैं।

हे पुरुहूत ! हम भी तेरे पुत्र हैं, फिर तेरे अबोध पुत्र हैं। इसलिए तेरे बहुत कुछ सुन्दर ज्ञान और सुन्दर कर्म हाथों में दे देने पर भी हम अपनी नादानि से त्रुटि कर सकते हैं और उस त्रुटि-न्यूनता के कारण ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि हमारा लोक बिगड़ जाए और परलोक भी बिगड़ जाए, हमारा इस संसार का सुख - सौभाग्य, दुःख - दौर्भाग्य में बदल जाए और मोक्ष की ओर की गति - प्रगति नरक की ओर की गति - दुर्गति बन जाए। अतः हम तुझ से प्रार्थना करते हैं कि तू हमें सुज्ञान और सुकर्म देकर भी सदा मध्य-मध्य में हमें प्रेरणा देते रहना, हमारा पथ दर्शन करते रहना।

हे जगदीश ! तू हमें इस जीवन पथ में सदा ऐसी शिक्षा देना कि जिससे हमारा यह जीवन सुखमय बन सके, शान्तिमय बन सके। अर्थात् हमें जीवन में ऐसे अर्थोपार्जन करने की ऐसी बुद्धि देना कि जिससे जहाँ हमारा बाह्य - जीवन सुखमय बने वहाँ हमारा आन्तरिक जीवन भी शान्तिमय बने। इतना ही नहीं, हमें जीवन में उस संयम के मार्ग पर चलाना, उस योग मार्ग पर चलाना कि जिससे हम जहाँ मुमर्यादित होकर संसार में पावन और आदर्श जीवन व्यतीत कर सकें, वहाँ उस पवित्र जीवन में योगमार्ग के सच्चे पथिक बनकर हम जीव इसी जीवन में तेरी परम आनन्दप्रद और विभोर कर देने वाली ज्योति

प्रार्थना सुमन भाग २

(३४)

को पा सकें । प्रभुवर ! अपने अत्यन्त पुरुषार्थ में तेरी कृपा को भर कर हम इसी जीवन में ही तेरी दिव्य ज्योति से ज्योतिर्माय होकर, तेरे दिव्य प्रकाश से प्रकाशमय होकर, तेरे आनन्द से आनन्दमय हो कर जीवन मुक्त हुए — हुए इस जगत् में विचर सकें ।

हे पुरुहूत इन्द्र ! इधर हमारा हार्दिक पुरुषार्थ हो और उधर तुम्हारा दिव्य अनुग्रह हो, तो फिर कौन सा कार्य है जो हो नहीं हो सकता । इसलिए इधर हम जी-जान से, प्राण-प्रण से पुरुषार्थ करते हैं, उधर तू कृपा कर, ताकि हम अपने जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकें । यही प्रार्थना है, यही पुकार है, हे पुरुहूत इन्द्र ! स्वीकार करो और हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

— ० —

प्रार्थना सं० ६

ओ३म् नमः पुरा ते वरुणोत् नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम् ।

त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूडभ व्रतानि ॥

ऋ० २-२८-८ ॥

अन्वयः—वरुण ! पुरा ते नमः, उत नूनम् । तुविजात !
उत अपरं ब्रवाम् । दूडभ ! पर्वते त्वे हि अप्रच्युतानि व्रतानि
कं श्रितानि ।

अन्वयार्थः—(वरुण) ! हे शुद्धतम वरुण करने के योग्य
परमेश्वर ! (पुरा ते नमः) पहले भी हम तुझे नमस्कार करते
रहे (उत नूनम्) और अब भी कर रहे हैं । (तुविजात !)
हे महाशक्ते ! हे बल में प्रसिद्ध भगवन् ! (उत अपरं ब्रवाम्)
और आगे भी करते रहेंगे । (दूडभ) हे दुर्लभ दर्शनीय प्रभो !
(पर्वते न त्वे हि अप्रच्युतानि व्रतानि कं श्रितानि) पर्वत में
के समान तुझ ही में कभी च्युत न होने वाले, कभी भंग न
होने वाले व्रत—नियम विधि—विधान आदि अनायास ही
आश्रित हैं ।

हे वरणीय परम देव ! पहले भी हम तुझे नमस्कार
करते रहे, अब भी करते हैं और आगे भी करते रहेंगे । हे भग-
वन् ! ऐसा हम क्यों करते रहे, कर रहे हैं और करते रहेंगे ?
इसलिये कि तेरे अनन्त उपकारों से हम सदा उपकृत रहे हैं,
तेरे दिव्य स्नेह और हित से हम सदा लाभाविन्त रहे हैं, तेरे
निःस्वार्थ सहयोग, सहानुभूति और सहायता को हम सदा प्राप्त
करते रहे हैं— । यही बातें हैं कि जिनके कारण कृतज्ञ होकर
हम तेरे प्रति नमते हैं ।

हे प्रभुदेव ! तूने हमें जो कुछ इस संसार में प्रदान किया है, उस-उस का तो हम वर्णन ही नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास उसके वर्णन करने के लिए न ही ऐसे शब्द हैं, न ही ऐसी वाणी है. और न ही ऐसी सामर्थ्य है कि जिससे हम ऐसा कर सकें। पर तू वरुण^१ ! यह सब कुछ प्रदान कर के निवृत्त हो जाता हो ऐसी बात नहीं, वरन् तू तो निरन्तर हमें दोषों से हटाता रहता है, दुर्गुण - दुर्गुणों से बचाता रहता है. पाप और अपराधों से पृथक् करता रहता है, गाली - गलोजों से निवृत्त करता रहता है, कुदृष्टि और कुचेष्टाओं से दूर करता रहता है, ऐसे, जैसे कि अग्नि में हाथ डालने पर हमारे माता-पिता हमें सावधान करते हैं वा हमारे हाथ को पोछे खींच लेने हैं, ताकि हम जलने से बच जायें और हम कष्ट पाने से भी बच जायें। इतना ही नहीं, तू माता - पिता के समान हमारे सिर पर वरद - हस्त भी रखना है, तू हमें अच्छे कर्म करने पर स्नेह और आशीर्वाद भी देता है, आल्लाह और प्रसाद भी देता है।

हे वरणीय अनुपम देव ! तेरे स्वभाव से हमें यह अनुभव हुआ है कि तू हमें पहले भी सुन्दर शरीर देता रहा, आज भी दे रहा है आगे भी देता रहेगा। तू हमारे पालन - पोषण आदि के लिये हमें पहले भी माता - पिता रूप दिव्य देवता रक्षक - संरक्षक के रूप में देता रहा, आज भी दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी नाना प्रकार के खाद्य, पेय, लेह्य और चूष्य आदि - आदि आस्वाद्य पदार्थ देता रहा, आज भी दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी

१ वरुण-वारयाति दोषादिति वरुणः । वृणोत्याच्छादयतीति वरुणः । व्रियते वृणोति वा वरुणः ।

सुख - सीमाग्र्य देता रहा आज भी दे रहा है, आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी प्रिय - प्रिय पुत्र - पुत्रियाँ देता रहा, आज भी दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी धन - वैभव देता रहा, आज भी दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी संसार में स्नेह - सम्मान देता रहा, आज भी दे रहा है, और आगे भी देता रहेगा। तू हमें पहले भी इस जगत् में सेवा - सरकार देता रहा, आज भी दे रहा है और आगे भी देता रहेगा। इस प्रकार तू अपने नानाविध उपकारों से हमें पहले भी उपकृत करता रहा, आज भी कर रहा है और आगे भी करता रहेगा।

हे वरुण ! इन सब तेरे अनुग्रहों को अनुभव करते हुये हम पहले भी तेरे कृतज्ञ रहे, आज भी तेरे कृतज्ञ हैं और हे तृवि-जान ! हे शक्ति में सब से महान् प्रभो ! हम आगे भी तेरे कृतज्ञ रहेंगे। हे वरणीय और बल में सब से प्रसिद्ध प्रभुवर ! हम पहले भी तूझे नमस्कार करते रहे आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरा स्मरण करते रहे, आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरा भजन करते रहे, आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरी स्तुति करते रहे, आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरा जप करते रहे, आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरा गुण - गान करते रहे आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। हम पहले भी तेरे लिए तप तपते रहे, आज भी तप तप रहे हैं और आगे भी तप तपते रहेंगे। हम पहले भी तेरे प्रति श्रद्धा रखते रहे, आज भी रखते हैं और आगे

भी रखते रहेंगे हमारी पहले भी तुझ पर निष्ठा रही, आज भी है और आगे भी रहेगी। हम पहले भी तेरे बिना नहीं रह पाये, आज भी नहीं रह पा रहे हैं और आगे भी नहीं रह पायेंगे। हम जीवन में पहले भी तेरी राह तकते रहे, आज भी तेरी राह तक रहे हैं और और आगे भी तेरी राह तकते रहेंगे। हम पहले भी अन्न - वस्त्र और आवास आदि सुख - सौभाग्यों के वर्तमान रहने पर भी तेरे बिना सदा अधूरापन अनुभव करते रहे हैं, आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे।

हे दूडभ ! हे दुर्द्वन्द्वनीय ! हे दुर्लभ दर्शनीय प्यारे प्रभु वर ! जैमे पर्वत अच्युत होते हैं, अचल होते हैं, निश्चल होते हैं, स्थिर होते हैं, वैसे ही तुझ में आश्रित - स्थित १ जो व्यत हैं - नियम हैं, वे दृढ़ होते हैं, अटल होते हैं।

हे शुद्धतम, पवित्रतम, बल में विख्यात और बड़े तप से प्रापणीय प्यारे परमात्मन् ! यह तो फिर भी कभी देखने वा सुनने वा पढ़ने में आ जाता है कि पर्वत भी च्युत होने लगते हैं, गिरने लगते हैं, टूटने लगते हैं और टुकड़े - टुकड़े होकर अपने स्थानों से हटने लगते हैं, पर नाथ ! तेरे व्यत, तेरे नियम, तेरे विधि - विधान सदा सर्वदा और सर्वथा अच्युत रहते हैं, अटल रहते हैं, अचल रहते हैं, निश्चल रहते हैं। तभी तो हे वरुण ! तेरे सम्बन्ध में यह सुनने को, देखने को पढ़ने और सोचने को मिलता है कि वरुणके व्यतों का, वरुण के नियमों का, वरुण के विधि विधानों का, वरुण की व्यवस्थाओं का कभी बाध नहीं हो सकता।

१ अद्वयानि वरुणस्य व्यतानि । ऋ० १-२४-१० ॥

प्रार्थना सुमन भाग २

(३६)

इसीलिये तो हे प्रभुवर ! सब तेरे सामने नमते हैं, सब तुझे श्रद्धा से नमस्कार करते हैं, सब तुम्हारे प्रति प्रह्वीभूत होते हैं ।

हे नाथों के नाथ ! हे दुर्लभ दर्शनीय ! हमें भी अपने समान दृढ़ता प्रदान करो जिससे हम भी साधना के व्रतों में, साधना के नियमों में, अहिंसा, सत्य आदि व्रतों में दृढ़ रहकर हृदय से पूर्ण पुरुषार्थ करके तेरे प्यार और आशीर्वाद के सच्चे पात्र बनकर, तुझ दुर्लभ दर्शनीय को सुलभ दर्शनीय कर सकें । यही प्रार्थना है, यही याचना है हमारी, स्वीकार करो और हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



प्रार्थना सं० ७

ओ३म् अग्ने मृड महान् अस्यय आ देवयुं जनम् ।

इयेथ बहिरासदम् ॥ सं० २३ ॥

अन्वयः अग्ने ! मृड, महान् असि, देवयुं जनम् अयः ।
आसदं बहिः आ इयेथ ।

अन्वयार्थः—(अग्ने ! मृड) हे ज्ञान प्रकाश के अनुपम स्रोत परमात्मन् ! तू मुझे सुखी कर । महान् असि तू महान् है । (देवयुं जनं १ अयः) तुझ इष्टदेव की जो हृदय से कामना करता है उस उपासक को तू प्राप्त होता है । (आसदं बहिः आ-इयेथ) अच्छी प्रकार बैठने योग्य मेरे हृदयासन पर आ विराजमान होओ ।

हे प्रकाशस्वरूप प्रभुवर ! हे सब के अग्रणी दिव्यदेव ! हे सबका सब प्रकार से नेतृत्व करने वाले जगत्पति परमेश्वर ! मुझे सुखी कर, तू मुझे शांति कर, तू मुझे तृप्त कर ।

हे प्यारे प्रभुवर ! तू महान् है, तू बड़ा है । इतना अधिक महान् इतना अधिक बड़ा कि तुझ से बढकर कोई और महान् नहीं है । तुझ से महान्-बड़े की तो बात ही दूर रही, तेरे तो समान भी कोई नहीं है । फिर तू महान् अर्थात् बड़ा ही नहीं वरन् महान् अर्थात् पूजनीय भी है, आदरणीय भी है, सत्करणीय भी है । प्रभुवर ! यों तो इस जगत् में धन-अन्न से, जमीन-जायदाद से, भूमि-भवनों से, खेत-खलियानों से, सुख-सौभाग्यों से, पद—प्रतिष्ठाओं से, योग्यता और योग्य-पदों से महान् व्यक्ति-बड़े व्यक्ति बहुत हैं, परन्तु वे महान् शब्द के दूसरे प्रिय अर्थ ५

१ एति प्राप्नोतीति अयः ॥ उणा० ४-१८८ ।

२ महान्-‘मह पूजयाम् (भ्वा०)

अनुरूप पूज्य नहीं हैं, आदरणीय नहीं हैं, श्रद्धास्पद नहीं है, क्योंकि उनका वह सब धन-वैभव, सुख-सौभाग्य केवल उनके अपने स्वार्थ के लिये ही उपयोग में आता है। अब जिसके भवन का बाह्य विद्युत-केन्द्र, बाह्य बल्व केवल उसको वा उसके परिवार को ही राह दिखाने, ठोकर खाने और गर्त में गिरने से बचाने के लिए है, तो वह बड़ा आदमी तो है, क्योंकि वह जहाँ अपने भवन के भीतर प्रकाश का प्रबन्ध कर सकता है वहाँ वह बाह्य भी कर सकता है। परन्तु ऐसा करके भी वह महान् अर्थात् पूज्य नहीं हो सकता, क्योंकि पूजनीय - आदरणीय सत्करणीय तो वह तभी बन सकता है जब कि उसका बल्व अन्यो के लिये भी प्रज्वलित होकर उन्हें भी राह दिखाये, उन्हें भी ठोकर खाने और गर्त में गिरने से बचाए। अब जब उसके प्रकाश से अन्यो को कुछ सुख-सुविधा ही नहीं मिलती तो ऐसी दशा में उसके प्रति उनके हृदय में पूजा, श्रद्धा वा आदर का भाव उत्पन्न भी तो वह कैसे हो ? इसी प्रकार यदि किसी के पास पर्याप्त जल की व्यवस्था है, पहनने ओढ़ने और बिछाने के लिए स्त्रों का काफी प्रबन्ध है, रहने आदि का पर्याप्त सुविधा-जनक आनन्द है तो इस में सन्देह नहीं कि वह महान् अर्थात् बड़ा आदमी है, पर यदि उसके अन्नादि खाद्य एवं दुग्ध उदक आदि उपपदार्थ केवल उसकी वा उसके परिवार को ही बुभुक्षा-प्यासा को शान्त करने, भूख-प्यास को मिटाने के काम आते हैं, उसके वे पहनने, ओढ़ने और बिछाने के वस्त्र केवल उसके वा उसके परिवार वालों को ही सर्दी, गर्मी आदि से बचाने के काम आते हैं, उसके कोष्ठ-प्रकोष्ठ, भवन और प्रासाद केवल उसको उसके परिवार को ही सर्दी गर्मी, धूप वर्षा, आँधी और तुफान

से बचाते हैं, तो इस में कोई सन्देह नहीं कि वह महान् व्यक्ति है, बड़ा आदमी है, परन्तु वह महान् अर्थात् पूज्य नहीं, आदरणीय नहीं, सत्करणीय नहीं, श्रद्धास्पद नहीं ! अब जब उसका अन्न, जल, किसी अन्य की भूख-प्यास मिटा ही नहीं सकता, उसके वस्त्र अन्य किसी को शीतोष्ण से बचा नहीं सकते, कमरे घर और प्रासाद किसी अन्य को सर्दी-गर्मी, वर्षा, आँधी-तुफान से बचा ही नहीं सकते, किसी अन्य को सुख-सुविधा देकर विश्राम प्रदान ही नहीं कर सकते तो तब किसी अन्य के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा-पूजा, का मान-सम्मान का, आदर और कृतज्ञता का भाव कैसे उत्पन्न हो ? इसलिए जो चाहता है कि मैं महान् बड़ा और बड़ा नहीं वरन् महान्-पूजनीय, आदरणीय, अभ्यर्हणीय और सत्करणीय भी बनूँ तो उसे चाहिये कि वह जहाँ इन सब सुख-सौभाग्यों से स्वयं सुख पाये वहाँ अन्यो को भी उनसे सुख-पहुँचाए ।

हे देदीप्यमान दिव्य देव ! इस जगत् में जो कोई थोड़ा बहुत महान् अर्थात् बड़ा और पूज्य है भी, तो वह तेरी कृपा से ही है, तेरी शिक्षा और प्रेरणा से ही है, परन्तु फिर भी वह तेरे से अधिक नहीं है । अधिक होने की बात तो दूर रही, वह तो तेरे समान भी नहीं है । वह कैसे ? ऐसे कि तेरे पास जो भी कुछ अन्न जल आदि खाद्य-पेय पदार्थ हैं, वे सब तू हमें ही दे देता है ताकि हमारी भूख-प्यास शान्त हो सके, जो भी रुई, रेशम और ऊन आदि वस्त्रों का साधन रूप वैभव तेरे पास है, सब का सब तू हमें प्रदान कर देता है ताकि हम सर्दी गर्मी से बच सकें । तू निवास के लिए हमें यह सारी विस्तृत भूमि भी दे देता है अपने लिए तो तू कुछ रखता ही नहीं है । कितना बड़ा

है दिल तेरा, कितना उदार है हृदय तेरा, एक ग्रास भोजन वा एक घूट पानी वा एकाध वस्त्र वा जरा सी जगह भी तो तूने अपने लिए नहीं रखी। यह सब कुछ प्रदान करके भी तू सदा प्रसन्न रहता है, सदा निहाल रहता है, सदा तृप्त रहता है। प्रभुवर ! यही है कारण जो तू सबसे अधिक महान् है, सबसे अधिक बढ़कर पूज्य है, सबसे बढ़कर आदरणीय है।

हे ज्योतिमय भगवन् ! (देवयुं जनम् अयः) तुष्ट-देव की जो हृदय से कामना करता है, तुझ परमात्मा-देव को जो हृदय से चाहता है, उस उपासक को—उस सच्चे साधक को तू प्राप्त होता है।

हे प्यारे प्रभुदेव ! तुझ दिव्य देव से, तुझ दिव्य दाता से जो नाना प्रकार के खाद्य एवं पेय पदार्थ प्राप्त करता है, धन-वैभव प्राप्त करता है, सुख—सौभाग्य प्राप्त करता है, पुत्र—पौत्र प्राप्त करता है और उस सब को पाकर उसी में ही मग्न हो जाता है, उसी में ही लीन हो जाता है, उसी में ही डूब जाता है तो उसे तू प्राप्त नहीं होता। तू केवल उसी को ही प्राप्त होता है जो तुझ से यह सब कुछ पाकर भी इस में रमता नहीं, इसमें डूबता नहीं, इसे पाकर अपने को कृतकृत्य नहीं समझता, वरन् तुझ दिव्य दाता को ही सदा चाहता रहता है, तेरी ही सदा कामना करता रहता है, तेरी ही धुन का सदा धनी बना रहता है। वह खाता है, लो खाने के लिए नहीं वरन् सशक्त होकर तेरी आराधना में बैठ सकने के लिए, वह अध्ययन करता है तो इसलिए नहीं कि जगत् में विद्वान् कहाए और मान-सम्मान पाए, वरन् इसीलिए कि उसे तेरा बोध हो सकें, वह जप करता है तो तेरे लिए, वह तप करता है तो तेरे लिए, वह श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता है तो केवल तेरे साक्षात्कार के

प्रार्थना सुमन भाग २

(४४)

लिए ... । तात्पर्य यह है कि उसका उद्देश्य केवल एक तू ही होता है, उसका लक्ष्य केवल एक तू ही होता है ऐसे सच्चे-सुच्चे साधक को तू प्राप्त होता है ।

हे पावन परमेश्वर ! मैं ऐसा सच्चा साधक बनूँ कि तू मुझे प्राप्त हो । तू मुझे प्राप्त होकर फिर कभी मुझ से दूर न हो, मुझे से कभी ओझल न हो । प्रभुवर ! मेरी यह प्रार्थना है कि तू बैठने योग्य, सब प्रकार से विराजमान होने योग्य, साधना से पवित्र बने हुए इस मेरे हृदयासन पर आकर विराजमान हो मेरे परम देव ! मेरे हृदयासन पर विराजमान होकर तू मुझे अपने प्रियतम दर्शनों से ऐसा विभोर कर, ऐसा तृप्त कर, ऐसा कृतकृत्य कि फिर मेरे लिए कोई अन्य द्रष्टव्य न रह जाय, कोई अन्य प्राप्तव्य न रह जाय । नाथ ! यही है प्रार्थना, यही है अभ्यर्थना, स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कर ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

— ० —

प्रार्थना सं० ८

ओ३म् भद्रं भद्रं न आभरेषमूर्जं शतक्रतो

यदिन्द्र मृडयासि नं ॥ सा० १७३ ॥

अन्वयः-शनक्रतो इन्द्र ! नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जं आभर, यत् नः मृडयासि ।

अन्वयार्थः-(१शतक्रतो !) हे सैकड़ों प्रकार के कर्मों को करने वाले परमेश्वर ! (नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जं आभर) तू हमें सुखकारी एवं कल्याणकारी अन्न और रस प्रदान कर वा प्राप्त करा (यत् इन्द्र नः मृडयासि) क्योंकि हे परमेश्वर ! तू तो हमें सुखी ही करता है ।

हे प्रभो ! तू शतक्रतु है, बहुविध प्रजाओं वाला है बहु-विध कर्मों वाला है । हे परमात्मन् ! जब हम तेरे अद्वितीय ज्ञान वेद का स्वाध्याय करते हैं तो उसमें नाना प्रकार के ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञान हमें देखने को मिलते हैं । जैसे कहीं भूगर्भ विज्ञान है, कहीं खगोल विज्ञान है, कहीं ज्योति विज्ञान है, कहीं सृष्टिविज्ञान है, कहीं मनोविज्ञान है, कहीं शरीरविज्ञान है, कहीं अध्यात्मविज्ञान है, कहीं चिकित्साविज्ञान है, कहीं औषधिविज्ञान है, कहीं शल्यचिकित्सा है, कहीं अग्निविज्ञान है, कहीं विद्युत्

१ शनक्रतो ! शतविधाः क्रतवो यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ, हे शत-क्रतो ! क्रतुः-कर्म च प्रजा च ।

२ भद्रम्-"भदि कल्याणे मुखे च ।"

३ "इषम्-अन्नम्" (निघ० २-७) इषः-इच्छा अन्नादीनि वा (दयानन्द) ।

४ उर्जम्-"ऊर्गं, वै रसः" (मे० ३-१०-४) । ऊर्जम्-पराक्रमम् (दयानन्द) ।

प्रार्थना सुमन भाग २

(४६)

विज्ञान है, कहीं यज्ञविज्ञान है, कहीं कृषि विषय है, कहीं गणित विषय है, कहीं अर्थ विषय है, कहीं शब्द-ज्ञान है, कहीं व्युत्पत्ति विज्ञान है। इसी प्रकार जैसे तेरे अद्वितीय ज्ञान वेद में नाना प्रकार का ज्ञान-विज्ञान भरा हुआ है वैसे ही तू बहु कर्मों वाला भी है। सारे संसार में नाना प्रकार के तेरे कर्म - कार्य हमें दिखाई देते हैं। यह सूर्य-चन्द्र, यह अग्नि - विद्युत्, यह धरती-आकाश, ये जल - वायु, ये नाना प्रकार के अन्न आदि खाद्य एवं दुग्ध-रस आदि पेय पदार्थ तूने ही तो उत्पन्न किये हैं। ये फल-फूल, ये धन - वैभव, ये सुख - सौभाग्य और इन के सेवन करने वाले इन प्राणियों को तूने ही बनाया है। फिर किस - किस तेरे कार्य को हम देखें, एक अपने शरीर को ही देखें तो यह ही इतना अद्भुत है कि यदि तूने हमें कृपा करके यह दे दिया है तो इस दह रूपा घर से फिर हमारा निकलने को मन नहीं करता। तेरे ज्ञान - विज्ञानों को और प्रज्ञानों को देखते हैं तो वे ऐसे हैं कि जब हम उनके स्वाध्याय में, उनके मनन, चिन्तन और निदिध्यासन आदि में लग जाते हैं तो हम अपना भोजन आदि भी भूल जाते हैं।

हे शतक्रतो ! सैंकड़ों प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का तू अनुपम स्रोत है, नानाविध कर्म - सुकर्मों का तू दिव्य स्रोत है। हे ऐसे प्यारे परमेश्वर ! तू (नः भद्रं इषं ऊजं आभर) हमें सुखकारी और कल्याणकारी अन्न और रस प्रदान कर। हे इन्द्र ! तू हमें ऐसे अन्न आदि खाद्य पदार्थ प्रदान कर, ऐसे दुग्ध - उदक आदि रस प्रदान कर कि जिससे हमारा इस लोक में सब प्रकार से सुख - सौभाग्य बढ़े और परलोक में भी हमारा सब प्रकार से कल्याण हो। तेरी कृपा से हम इस संसार में ऐसे पवित्र ढङ्ग से धन-अन्न-रस आदि का उपार्जन करें, उसे ऐसे यज्ञमय ढङ्ग

से प्रयोग में लावें कि जिस में ब्रह्मयज्ञ - ब्रह्म का श्रवण मनन चिन्तन - निदिध्यासन आदि भी हो सकें, देवयज्ञ - द्रव्ययज्ञ - अग्निहोत्र का भी प्रति दिन उदार भाव से सम्पादन हो सकें, बलिबैश्वदेव यज्ञ भी हो सके अर्थात् गौ कुक्कुर, दीन-हीन जनों के लिये भी धन - अन्न - वस्त्र आदि का भाग निकल सकें, पितृयज्ञ भी हो सके अर्थात् माता - पिता आदि वृद्धजनों की भी जिस से श्रद्धा और सम्मान पूर्वक सेवा सुश्रूषा हो सकें, अतिथियज्ञ अर्थात् देश - जाति के उत्थान में निःस्वार्थ भाव से संलग्न संन्यासी-विद्वानों का भी श्रद्धा सम्मान पूर्वक भली-भाँति पालन - पोषण हो सके और स्वयं को यज्ञशेष सेवन करने का सौभाग्य मिल सके, जिससे कि जहाँ हमें इस संसार में स्नेह, सम्मान, यश और सुख मिले वहाँ इस जगत् से विदा होने पर भी हमारा सब प्रकार से कल्याण होवे ।

हे जगदीश्वर ! हे सर्वेश्वर ! हम इस संसार में धर्म—पूर्वक तेरी कृपा से धन - अन्नादि को प्राप्त कर उस का ऐसे सेवन करें कि हम में ऊँची से ऊँची इच्छा - कामना - अभि—लाषा उत्पन्न हो और जिस उच्चाभिलाषा को पूर्ण करने के लिए हमें पराक्रम भी प्रदान करना, ताकि हम सफल मनोरथ हो सकें ।

हे परमेश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् ! क्योंकि तू हमें सब प्रकार से सुखी करना चाहता है, हमारा सब प्रकार से कल्याण

प्रार्थना सुमन भाग २

(४८)

करना चाहता है, तभी हम तुझ से यह प्रार्थना करते हैं, तुझ से यह विनय करते हैं, कि तू हमें सुखद एवं कल्याणप्रद अन्न-रस दे और उसके धर्म पूर्वक सेवन से उत्कट अभिलाषा के योग्य अन्तिम प्राप्तव्य के प्राप्त करने का पराक्रम भी प्रदान कर, ताकि, हम तेरे उस परम सुख - परम शान्ति - परम आनन्द को पा जायें जिस के पाने पर फिर कुछ पाने को शेष नहीं रहता ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



प्रार्थना सं० ६

ओ३म् हते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजु० ३६-१८ ॥

अन्वयः—दृते ! मा दृह । सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा
मा सम्-ईक्षन्ताम् । अहं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

अन्वयार्थः—(दृते !) हे अविद्यान्धकार का निवारण
करने वाले जगदीश्वर ! (मा दृह । तू मुझे दृढ़ कर, (सर्वाणि
भूतानि मित्रस्य चक्षुषा मा सम्-ईक्षन्ताम्) सब प्राणी मित्र
की दृष्टि से मुझे देखें । (महं मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षे) मैं भी मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूं । इस
प्रकार हम सब परस्पर एक दूसरे को (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा-
महे) मित्र की दृष्टि से देखें ।

हे ईश्वर ! हे जगदीश्वर ! हे सर्वेश्वर ! हे परमेश्वर !
तू अपने व्रतों में, अपने नियमों में, अपनी व्यवस्थाओं में, अपने
गुण-कर्म-स्वभावों में सदा दृढ़ रहता है, सदा निश्चल रहता है ।
तू सदा अविद्यान्धकार से परे रहता है और विद्या-विज्ञान में
सर्वदा विद्यमान रहता है ।

हे ईश ! हे जगदीश हे सर्वेश ! हे परमेश ! हे दिव्येश !
तू मुझे भी अपने मानवोचित व्रतों में, नियमों में, विधि-विधानों
में सदा दृढ़ कर । तू मेरे सर्वविध अविद्यान्धकार का निवारण
कर और मुझे विद्या-विज्ञान से भरपूर कर । तू मुझे वैदिक धर्म

के समझने में ऐसा निपुण कर और उसके आचरण में ऐसा प्रवीण कर, कि मेरे द्वारा सब को निरन्तर सुख मिले। शान्ति मिले। मेरे सुखद और शान्तिमय व्यवहारों के परिणामस्वरूप सभी प्राणी मुझे मित्र की पवित्र दृष्टि से देखें, स्नेह और विश्वास की प्रिय दृष्टि से देखें। उनके हृदय में मेरे प्रति कभी किञ्चि-चन्मात्र भी वैरभाव न रहे। तात्पर्य यह है कि उनको मैं सब प्रकार से मित्र ही प्रतीत होने लगूँ, स्नेह और विश्वास की साक्षात् मूर्ति ही भासने लगूँ।

हे सब प्रकार से समर्थ परमेश्वर ! मैं ही केवल ऐसा नहीं चाहता कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, स्नेह और विश्वास की दृष्टि से देखें, वरन् मैं हृदय से चाहता हूँ कि मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, स्नेह और विश्वास की दृष्टि से देखूँ।

हे मित्रों के भी परम मित्र परमेश्वर ! इस प्रकार परस्पर मित्र भाव से निरन्तर एक दूसरे को देखने से और एक दूसरे से मित्रता का व्यवहार करने से शनैः शनैः ऐसा वातावरण बन जाय कि हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखने लगे, एक दूसरे को स्नेह की और विश्वास की दृष्टि से देखने लगे।

हे प्यारे परमेश्वर ! इस मित्र भाव से-इस स्नेह भाव से ओत-प्रोत हुए-हुए हम परस्पर इतने निकट और सन्निकट आ जायें कि हमें एक दूसरे का दोष अपना दोष अनुभव होने लगे, एक दूसरे का हित अपना हित प्रतीत होने लगे, एक दूसरे की गुह्य बात अपनी गुह्य बात भासने लगे, एक-दूसरे का गुण-अवगुण अपना ही गुण-अवगुण लगने लगे, एक दूसरे की आपत्ति-

१ भट्ट हरिश्शतक ७३ ।

विपत्ति अपनी ही आपत्ति-विपत्ति प्रतीत होने लगे, एक दूसरे की, की हुई सहायता अपनी सहायता प्रतीत होने लगे, जिससे कि हम सहज में ही मित्र के दोषों का निवारण ऐसे स्नेह और उत्साह से कर सकें जैसे कि हम अपने ही दोषों का निवारण ऐसे ही स्नेह और उत्साह से कर सकें जैसे कि वे अपने ही दोषों को दूर कर रहे हों। ऐसे ही हम मित्र का हित ऐसे स्नेह और उत्साह से कर सकें जैसे कि हम अपना ही हित कर रहे हों। ऐसे ही हम मित्र की गुप्त बातों को ऐसे गुप्त रख सकें जैसे कि हम अपनी गुप्त बातों को गुप्त रखते हैं, ऐसे ही हम मित्र के गुणों की ऐसे प्रशंसा कर सकें जैसे कि हम अपने ही गुणों की प्रशंसा कर रहे हों, ऐसे ही हम मित्र को आपत्ति में फसा हुआ देखकर उसको ऐसे उस आपत्ति में से निकालने के लिए लग सकें जैसे कि हम अपने को आपत्ति से निकालने में लग जाते हैं। ऐसे ही आपत्ति पड़ने पर हम उसकी ऐसे सहायता कर सकें, जैसे कि हम अपनी सहायता करते हैं। और ऐसे ही मित्र भी हमारा स्नेह और उत्साह से ऐसे हित कर सकें जैसे कि वे अपना ही हित कर रहे हों, ऐसे ही हमारी गुप्त बातों को वे ऐसे गोपनीय रख सकें जैसे कि वे अपनी ही गोपनीय बातों को गुप्त रखते हैं, ऐसे ही वे हमारे गुणों की प्रशंसा ऐसे कर सकें जैसे कि वे अपने ही गुणों की प्रशंसा कर रहे हों, ऐसे ही आपत्ति से हमें मुक्त करने में वे ऐसे प्रवृत्त हो सकें जैसे कि वे अपने को आपत्ति से मुक्त करने में प्रवृत्त हो रहे हों, ऐसे ही हमारी आपत्ति में वे ऐसे सहायता कर सकें जैसे कि वे आपत्ति में पड़ने पर अपनी ही सहायता में प्रवृत्त हो रहे हों ।

प्रार्थना सुमन भाग २

(१२)

हे ईश्वर ! इसी सुन्दर स्नेह और हित से परिपूर्ण अपनत्व के दिव्य व्यवहार के लिये ही हम प्रार्थना कर रहे हैं कि तू ऐसी कृपा कर कि जिस से हम सब परस्पर कए — दूसर को मित्र की, स्नेह और विश्वास की दृष्टि से देखें ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



प्रार्थना सं० १०

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।

त्वामवस्युराचके ॥ सम० १५८५ ॥

अन्वयः-वरुण ! अवस्युः त्वाम् आचके । मे इमं हवं श्रुधि,
अद्य च मृडय ।

अन्वयार्थः- (वरुण !) हे पापनिवारक प्रभो ! (अवस्युः)
अन्तः करण से अपना रक्षण संरक्षण चाहता हुआ मैं (त्वाम्
आचके) तुझ को पुकारता हूँ, तुझ से प्रार्थना करता हूँ, तुझे
रक्षक—संरक्षक के रूप में चाहता हूँ । (मे इमं इवं श्रुधि)
तू मेरी इस पुकार को सुन, मेरी इस प्रार्थना को सुन (अद्य च
मृडय) और मुझे आज हो सुखी कर, आनन्दित कर ।

हे वरुण ! हे पाप—निवारक सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! जब
मैं जागा, जब मैं सचेत हुआ, जब मैंने होश सम्भाला तो तब
मैंने इस संसार में चहुं ओर से अपने आप को राक्षसों, दस्युओं
और लुटेरों से घिरा हुआ पाया, अपने को काम, क्रोध, लोभ,
मोह और अहङ्कार आदि से घिरा हुआ पाया, अपने को दुर्गुण-
दुर्व्यसनों से घिरा हुआ पाया, अपने को दुर्भावनाओं और
दुष्प्रवृत्तियों से घिरा हुआ पाया, अपने को पाप और सन्तापों से
घिरा हुआ पाया, अपने को कष्ट और क्लेशों से घिरा हुआ
पाया, अपने को आघ और व्याधियों से ग्रस्त हुआ—हुआ पाया,
अपनी ज्ञानेन्द्रियों और जर्मेन्द्रियों को बगावत करती हुई पाया,
अपने मन और बुद्धि को आत्मा में विमुख होकर दुर्विचारों और
दुश्चिन्तनों का भरा हुआ भण्डार पाया, आत्मा को निराश,
उदास और हताश पाया ।

मैंने अपने आप को जब और सावधान होकर देखा तो मुझे प्रतीत हुआ कि मैं पर्याप्त लुट चुका हूँ, मेरा शारीरिक संगठन टूट चुका है, सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ शिथिल पड़ चुकी हैं। इसलिए किसी भी नवीन ज्ञान की उपलब्धि के लिए किये जाने वाले उद्यम के प्रति मेरे में कोई उमंग नहीं उठती, सब प्रकार से, सब ओर से मैं निराश और हताश हो चुका हूँ। इतने पर भी जो कुछ मुझ में शेष है, मैं हृदय से चाहता हूँ कि किसी प्रकार इस की रक्षा कर पाऊँ, इसी को बचा पाऊँ तो भी ठीक है। मैं ऐसा करने के लिए अर्थात् अपने को दुर्गुण-दुर्व्यसनों, पाप-तापों, कष्ट-क्लेशों से बचाने के लिये वन-उपवन में, एकान्त आश्रम वा साधना सदन में, गुरुकुल वा ऋषिकुल में, काशी वा हरिद्वार में, मथुरा वा वृन्दावन में, यमुना वा गंगा के तीर पर ले गया, इस आशा और विश्वास पर कि ऐसे स्थानों पर मैं राक्षसों दस्युओं से बच जाऊँगा मैं इन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, ईर्ष्या द्वेष आदि से बच जाऊँगा, दुर्गुण दुर्व्यसनों से बच जाऊँगा, पाप-तापों से बच जाऊँगा, आधि-व्याधि अर्थात् मानसिक कष्ट एवं शारीरिक कष्ट-क्लेशों से बच जाऊँगा, पर मुझे क्या पता था कि इन धार्मिक विद्यालयों, शिक्षणालयों, आश्रमों, तपोवनों, मथुरा, काशी, हरिद्वार, ऋषिकेश, गङ्गोत्री सदृश पवित्र माने जाने वाले स्थानों में भी ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि राक्षस और दस्यु मेरा पीछा नहीं छोड़ेंगे और मुझे शरीर से क्षीण, मन से अशान्त और आत्मा से निराश - हताश एवं उत्साह हीन बना देंगे। उनका भी क्या, क्योंकि वे मेरी त्रुटियों को, मेरी कमजोरियों को भली भाँति जान चुके हैं, अतः वे इन आश्रमों, तपोवनों में भी जहाँ मुझे अकेला और निस्सहाय अवस्था में देखते हैं, मुझ

प्रार्थना सुमन भाग २

(५५)

पर झट आक्रमण कर देने हैं जिसके परिणाम स्वरूप मैं शरीर से तप्त और मन से सन्तप्त और आत्मा से उत्साह—हीन होने लगता हूँ ।

हे वरणीय प्रभुवर ! मैं “अवस्थुः” रूप में अब भी सच्चे हृदय से, सच्ची तड़प से, सच्ची लगन से यह चाहता हूँ कि किसी प्रकार से मैं इन राक्षसों से, इन दस्युओं से अपना पिण्ड छड़ाऊँ, किसी भी प्रकार से मैं इन के चक्रव्यूह को तोड़ कर बाहर निकल सकूँ । इस के लिये किसी ऐसे महापुरुष की शरण में मैं जाऊँ जहाँ मेरी सब प्रकार से इन से रक्षा—सुरक्षा हो सके । यह विचार कर मैं जानियों के समोप गया, योगियों के मन्त्रिकट गया, तपस्वियों के पास गया, यह सोच कर, कि ये सब मुझ इन राक्षसों से, इन दस्युओं से, इन पापों से और इन के परिणाम में होने वाले ताप सन्तापों से बचा लेगे, एवं मुझे हर दृष्टि से ये शरीर से सुखी, मन से शान्त और आत्मा से तृप्त कर देंगे । ऐसा विचार भी इस लिये आया कि ये सब मुझे अपनी अपेक्षा बहुत अधिक सुखी शान्त और तृप्त प्रतीत हुये, शरीर से अधिक स्वस्थ, मन से अधिक प्रसन्न और आत्मा से अधिक उच्च प्रतीत हुए । परन्तु मुझे शीघ्र ही ऐसा ज्ञात होने लगा कि वे विचारे भी किसी न किसी रूप से इन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और ईर्ष्या द्वेष आदि के चंगुल में फँसे हुये हैं । यह बात पृथक् है कि कोई कुछ कम और कोई कुछ अधिक । उन विचारे बड़े—बड़े महापुरुषों में से भी किसी ने यह ठेका नहीं लिया, मुझे यह आश्वासन नहीं दिया, यह प्रतिज्ञा किसी ने नहीं की कि—“हम तुझ को सर्वथा इन राक्षसों से, इन पाप-तापों से, इन दुर्गुण-दुर्व्यसनों से मुक्त कर देंगे ।” सभी ने एक ही ओर मुझे संकेत दिया, सभी ने इस

विषय में मुझे एक ही विशेषज्ञ दिव्य देव की राह बतायी। वह कौन ? वरुण देव।" सब ने एक ही स्वर से कहा कि 'यही है वह परम देव, यही है वह परम परमेश्वर, यही है वह वरणीय सर्वश्रेष्ठ प्रभुदेव, जो सब प्रकार से तुम को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षसों के चक्रव्यूह से मुक्त कर बाहर निकाल सकता है, सब प्रकार से दुर्गुण-दुर्व्यसनों से छुड़ा सकता है, तुम्हारे पाप-तापों को समाप्त कर सब प्रकार से तुम्हें धो-धो कर साफ-सुथरा निर्मल और निष्कलक बना सकता है, और फिर सब प्रकार से तुम्हारे सिर पर अपने प्यार और आशीर्वाद का वरद हस्त भी धर सकता है। फिर सर्वत्र तुम्हें प्रभु की कृपा से इस जगत् में मान-सम्मान मिल सकता है, सेवा-सत्कार मिल सकता है। फिर ये सब काम-क्रोध आदि राक्षस और दस्यु भी 'यह जान कर कि तुम्हारे सिर पर वरणीय प्रभु देव का वरद-हस्त है, तुम को दूर ही से नमस्कार करेंगे। इस प्रकार शनैः शनैः वरुण-शरण में नित्य तुम्हारी श्रद्धा और प्रीति के बढ़ने का परिणाम यह होगा कि वह तुम को सब प्रकार से तृप्त कर देगा। निहाल कर देगा।

हे नाथ ! पहले भी मैं घर से निकला किसी अनुपम रक्षक की तलाश में, तो तब मुझे ये ही विद्वान्, तपस्वी, आचार्य गुरु, ध्यानी, ज्ञानी, योगी जन ही अनुपम लगे, दिव्य लगे, भव्य लगे और मुझे उनसे यह आशा बन्धी कि ये मुझे उन राक्षसों से, उन दस्युओं से, उन पाप-तापों से उभार लेंगे, मुझ दीन-हीन अशक्त को सब प्रकार से सशक्त कर देंगे और उन से सब तरह से बचा लेंगे.....। परन्तु इन के द्वारों पर भी जब मेरी कुछ सुनाई नहीं हुई, कुछ चाकित्सा नहीं हुई अर्थात् दयनीय दशा कुछ सुधरी नहीं इत्यादि, तो फिर मैंने हार कर पूछा कि

पर झट आक्रमण कर देने हैं जिसके परिणाम स्वरूप मैं शरीर से तप्त और मन से सन्तप्त और आत्मा से उत्साह—हीन होने लगता हूँ ।

हे वरणीय प्रभुवर ! मैं "अवस्थुः" रूप में अब भी सच्चे हृदय से, सच्ची तड़प से, सच्ची लगन से यह चाहाता हूँ कि किसी प्रकार से मैं इन राक्षसों से, इन दस्युओं से अपना पिण्ड छुड़ाऊँ, किसी भी प्रकार से मैं इन के चक्रगूढ़ को तोड़ कर बाहर निकल सकूँ । इस के लिये किसी ऐसे महापुरुष की शरण में मैं जाऊँ जहाँ मेरी सब प्रकार से इन से रक्षा—सुरक्षा हो सके । यह विचार कर मैं ज्ञानियों के समोप गया, योगियों के मन्त्रिकट गया, तपस्वियों के पास गया, यह सोच कर, कि ये सब मुझे इन राक्षसों से, इन दस्युओं से, इन पापों से और इन के परिणाम में होने वाले ताप सन्तापों से बचा लेगे, एवं मुझे हर दृष्टि से ये शरीर से सुखी, मन से शान्त और आत्मा से तृप्त कर देंगे । ऐसा विचार भी इस लिये आया कि ये सब मुझे अपनी अपेक्षा बहुत अधिक सुखी शान्त और तृप्त प्रतीत हुये, शरीर से अधिक स्वस्थ, मन से अधिक प्रसन्न और आत्मा से अधिक उच्च प्रतीत हुए । परन्तु मुझे शीघ्र ही ऐसा ज्ञात होने लगा कि वे बिचारे भी किसी न किसी रूप से इन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और ईर्ष्या द्वेष आदि के चंगुल में फँसे हुये हैं । यह बात पृथक् है कि कोई कुछ कम और कोई कुछ अधिक । उन बिचारे बड़े—बड़े महापुरुषों में से भी किसी ने यह ठेका नहीं लिया, मुझे यह आश्वासन नहीं दिया, यह प्रतिज्ञा किसी ने नहीं की कि—“हम तुझ को सर्वथा इन राक्षसों से, इन पाप-तापों से, इन दुर्गुण-दुर्व्यसनों से मुक्त कर देंगे ।” सभी ने एक ही ओर मुझे संकेत दिया, सभी ने इस

विषय में मुझे एक ही विशेषज्ञ दिव्य देव की राह बतायी। वह कीन ? वरुण देव । ” सब ने एक ही स्वर से कहा कि ‘यही है वह परम देव, यही है वह परम परमेश्वर, यही है वह वरणीय सर्वश्रेष्ठ प्रभुदेव, जो सब प्रकार से तुम को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षसों के चक्रव्यूह से मुक्त कर बाहर निकाल सकता है, सब प्रकार से दुर्गुण-दुर्व्यसनों से छुड़ा सकता है, तुम्हारे पाप-तापों को समाप्त कर सब प्रकार से तुम्हें धो-धो कर साफ-सुथरा निर्मल और निष्कलक बना सकता है, और फिर सब प्रकार से तुम्हारे सिर पर अपने प्यार और आशीर्वाद का वरद हस्त भी धर सकता है। फिर सर्वत्र तुम्हें प्रभु की कृपा से इस जगत् में मान-सम्मान मिल सकता है, सेवा-सत्कार मिल सकता है। फिर ये सब काम-क्रोध आदि राक्षस और दस्यु भी ‘यह जान कर कि तुम्हारे सिर पर वरणीय प्रभु देव का वरद-हस्त है, तुम को दूर ही से नमस्कार करेंगे। इस प्रकार शनैः शनैः वरुण-शरण में नित्य तुम्हारी श्रद्धा और प्रीति के बढ़ने का परिणाम यह होगा कि वह तुम को सब प्रकार से तृप्त कर देगा। निहाल कर देगा।

हे नाथ ! पहले भी मैं घर से निकला किसी अनुपम रक्षक की तलाश में, तो तब मुझे ये ही विद्वान्, तपस्वी, आचार्य गुरु, ध्यानी, ज्ञानी, योगी जन ही अनुपम लगे, दिव्य लगे, भव्य लगे और मुझे उनसे यह आशा बन्धी कि ये मुझे उन राक्षसों से, उन दस्युओं से, उन पाप-तापों से उभार लेंगे, मुझ दीन-हीन अशक्त को सब प्रकार से सशक्त कर देंगे और उन से सब तरह से बचा लेंगे.....। परन्तु इन के द्वारों पर भी जब मेरी कुछ सुनाई नहीं हुई, कुछ चिकित्सा नहीं हुई अर्थात् दयनीय दशा कुछ सुधरी नहीं इत्यादि, तो फिर मैंने हार कर पूछा कि

“मैं कहाँ जाऊँ, किस के द्वार पर अलख जगाऊँ ? तो इस पर सब ने एक स्वर से कहा कि “वरुण अर्थात् वरणीय प्रभु ही ऐसा है जहाँ तुम्हारी सब प्रकार की चिकित्सा हो जायेगी...।” मैं ने पूछा-‘कहाँ है वह ?’ उत्तर मिला कि वह इन आँखों से दिखाई नहीं देता, इन कानों से सुनाई नहीं देता, इस त्वचा से छुआ नहीं जा सकता इत्यादि.....।” मैंने फिर पूछा-‘मैं क्या करूँ और कैसे करूँ ?’ इस पर वे बोले-“कुछ भी करो, वहाँ पहुँचो, क्योंकि भले ही उसके कान नहीं हैं पर सुनता वह सब की है, भले ही उसकी हमारी तरह आँखें नहीं हैं पर वह देखता सबको है, उसी के यहाँ से तुझ पर कृपा दृष्टि होगी, भले ही उसके हाथ न हों पर वरद - हस्त वही तेरे सिर पर रखेगा, भले ही उसके पास तुम्हें कोई दवा न दिखाई दे पर यह निश्चय है कि तेरे रोग का सही निदान वहीं से ही होगा, सही चिकित्सा वहीं से ही होगी । उसका वह दर है कि जहाँ तुम्हारी पूर्ण धुलाई होगी, पूर्ण सफाई हागी । वह दिव्य शद्धतम प्रभुवर तुम्हें धो - धा कर स्वच्छ - निर्मल बना कर जगत् में ऐसा खड़ा कर देगा कि न फिर तुम्हारी आधि रहेगी न व्याधि रहेगी, न मानसिक सन्ताप रहेगा और न शारीरिक ताप रहेगा । वह तो तब तुम्हारे ऊपर भीतर से ऐसी आनन्द की वृष्टि करेगा कि फिर तुम्हारी सब प्रकार की तपश मिट जायेगी ।

हे प्रियतम वरुण ! जब से हर ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, योगी, विद्वान्, ऋषि, मुनि आदि ने तेरी ओर एक स्वर से संकेत किया है तभी से मैं ‘अवस्युः’ अन्तः करण से अपने रक्षण-संरक्षण की हृदय में टीस लिये हुये तुम्हें ही पुकार रहा हूँ, केवल तेरे ही द्वार पर अलख जगा रहा हूँ केवल मात्र तुझ से प्रार्थना कर रहा हूँ.....।

हे प्यारे ओर सब जग से न्यारे वरुण ! सभी द्वारों से निराश ओर हताश होकर अब मैं केवल मात्र तेरी शरण में आया हूँ । अतः हे प्रभुवर ! तू मुझे अपने द्वार से खाली न लौटाना । हे भगवन् ! (मे इमं हवं श्रुधी) तू मेरी इस प्रार्थना को सुन तू मेरी इस पुकार को सुन तू मेरी इस फरियाद को सुन (अद्य च मृडय) ओर आज ही मुझे सब प्रकार से सुखी कर अर्थात् शरीर को व्याधियों से मुक्त करके मुझे सुखी कर मन को आधियों से मुक्त कर सब प्रकार से मुझे शान्त कर आत्मा को निराशा से मुक्त कर सब प्रकार से मुझे परि-तृप्त कर ।

हे प्रियतम प्रभो ! अब मुझे ऐसा अनुभव होने लगा है कि मैं उस दर पर आ गया हूँ जहाँ से कहीं ओर मुझे जाना नहीं पड़ेगा अब मैं उस द्वार पर पहुँच गया हूँ जहाँ से बढ़ कर कोई और द्वार नहीं हो सकता । अब मैं उस दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ जहाँ मेरी हर अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी और फिर मैं सब प्रकार से उत्साह सम्पन्न होकर जिधर को भी पग बढ़ा दूँगा उधर ही मेरी विजय होगी । तब तेरी पावन छत्र-छाया में तो मेरा सब प्रकार से भला ही भला होगा—कल्याण ही कल्याण होगा ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—समाप्त—

शक्ति प्रेस, शक्ति आश्रम, शक्ति भवन, (नरह पुल कनखल)

“मैं कहाँ जाऊँ, किस के द्वार पर अलख जगाऊँ ? तो इस पर सब ने एक स्वर से कहा कि “वरुण अर्थात् वरणीय प्रभु ही ऐसा है जहाँ तुम्हारी सब प्रकार की चिकित्सा हो जायेगी...” मैं ने पूछा-‘कहाँ है वह ?’ उत्तर मिला कि वह इन आँखों से दिखाई नहीं देता, इन कानों से सुनाई नहीं देता, इस त्वचा से छूआ नहा जा सकता इत्यादि.....।” मैंने फिर पूछा-‘मैं क्या करूँ और कैसे करूँ ?’ इस पर वे बोले-“कुछ भी करो, वहाँ पहुँचो, क्योंकि भले ही उसके कान नहीं हैं पर सुनता वह सब की है, भले ही उसकी हमारी तरह आँखें नहीं हैं पर वह देखता सबको है, उसी के यहाँ से तुझ पर कृपा दृष्टि होगी, भले ही उसके हाथ न हों पर वरद - हस्त वही तेरे सिर पर रखेगा, भले ही उसके पास तुम्हें कोई दवा न दिखाई दे पर यह निश्चय है कि तेरे रोग का सही निदान वही से ही होगा, सही चिकित्सा वहीं से ही होगी । उसका वह दर है कि जहाँ तुम्हारी पूर्ण धुलाई होगी, पूर्ण सफाई हागी । वह दिव्य शुद्धतम प्रभुवर तुम्हें धो - धा कर स्वच्छ - निर्मल बना कर जगत् में ऐसा खड़ा कर देगा कि न फिर तुम्हारी आधि रहेगी न व्याधि रहेगी, न मानसिक सन्ताप रहेगा और न शारीरिक ताप रहेगा । वह तो तब तुम्हारे ऊपर भीतर से ऐसी आनन्द की वृष्टि करेगा कि फिर तुम्हारी सब प्रकार की तपश मिट जायेगी ।

हे प्रियतम वरुण ! जब से हर ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, योगी, विद्वान्, ऋषि, मुनि आदि ने तेरी ओर एक स्वर से संकेत किया है तभी से मैं ‘अवस्युः’ अन्तःकरण से अपने रक्षण-संरक्षण की हृदय में टीस लिबे हुये तुम्हें ही पुकार रहा हूँ, केवल तेरे ही द्वार पर अलख जगा रहा हूँ केवल मात्र तुझ से प्रार्थना कर रहा हूँ.....।

प्रार्थन सुमन भाग २

(५८)

हे प्यारे ओर सब जग से न्यारे वरुण ! सभी द्वारों से निराश ओर हताश होकर अब मैं केवल मात्र तेरी शरण में आया हूँ । अतः हे प्रभुवर ! तू मुझे अपने द्वार से खाली न लौटाना । हे भगवन् ! (मे इमं हवं श्रुधी) तू मेरी इस प्रार्थना को सुन तू मेरी इस पुकार को सुन तू मेरी इस फरियाद को सुन (अद्य च मृडय) ओर आज ही मुझे सब प्रकार से सुखी कर अर्थात् शरीर को व्याधियों से मुक्त करके मुझे सुखी कर मन को आधियों से मुक्त कर सब प्रकार से मुझे शान्त कर आत्मा को निराशा से मुक्त कर सब प्रकार से मुझे परि—तृप्त कर ।

हे प्रियतम प्रभो ! अब मुझे ऐसा अनुभव होने लगा है कि मैं उस दर पर आ गया हूँ जहाँ से कहीं ओर मुझे जाना नहीं पड़ेगा अब मैं उस द्वार पर पहुँच गया हूँ जहाँ से बढ़ कर कोई और द्वार नहीं हो सकता । अब मैं उस दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ जहाँ मेरी हर अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी और फिर मैं सब प्रकार से उत्साह सम्पन्न होकर जिधर को भी पग बढ़ा दूँगा उधर ही मेरी विजय होगी । तब तेरी पावन छत्र-छाया में तो मेरा सब प्रकार से भला ही भला होगा—कल्याण ही कल्याण होगा ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—समाप्त—

शक्ति प्रेस, शक्ति आश्रम, शक्ति भवन, (नरह पुल कनखल)

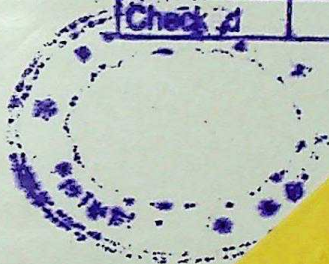
(५६)
 "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन द्वारा श्रद्धापूर्वक दान देने वाले महा-
 नुमावों के सहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस्तकें :—

क्रम सं०	नाम पुस्तक	प्र० सं०	द्वि० सं०	तृ० सं०	च० सं०
१	प्रार्थना सुमन भाग-१	११००	४०००	४०००	४०००
२	कोन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	४०००	४०००
		पं० सं० ४०००	पं० सं० ४०००		
३	वेद सुघा, भाग-१	२०००	४०००	४०००	
४	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कोन ? भाग-१	२०००	४०००	४०००	४०००
५	महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००	४०००		
६	वेद सुघा भाग-२	२०००	४०००	४०००	
७	विनय सुमन, भाग-१	१०००	४०००	४०००	
८	प्रार्थना प्रदीप भाग-१	२०००	४०००	४०००	
९	प्रार्थना प्रसून भाग-१	२०००	४०००	४०००	
१०	प्रार्थना सुमन भाग-२	२०००	४०००	४०००	
११	विनय सुमन भाग-२	१०००	४०००	४०००	
१२	अनन्त की ओर	२०००	४०००	४०००	४०००
१३	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग-१	२०००	२०००	४०००	
१४	" " भाग-२	२०००	४०००		
१५	" " भाग-३	२०००	४०००		
१६	" " भाग-४	४०००			
१७	वैदिक गृहस्थाश्रम (सुखी गृहस्थ वा दाम्पत्य जीवन)	३०००	४०००	४०००	४०००
१८	प्रभात वन्दन	३०००	४०००		
१९	शयन विनय	४०००	४०००		
२०	वेदोपदेश, भाग-१	४०००	३०००		
२१	वैदिक रश्मियः, भाग-१	४०००	४०००		

- २३ विनय सुमन, भाग ३ ३०० ४०० (६०)
- १३ बिदुर जी की दृष्टि में
बुद्धिमान् कौन ? भाग-२ ४००० ४०००
- १४ वैदिक आदर्श परिवार-भाग १ ४००० ४०००
- १५ वैदिक रश्मियाँ, भाग २ ३००० ४०००
- १६ ब्रह्मयज्ञ (वैदिक सन्ध्या) ४००० ४०००
- १७ वैदिक रश्मियाँ, भाग-३ ३००० ४०००
- १८ पावमानो "वरदा वेदमाता" ४००० ४०००
- १९ यम नियम ४००० ४०००
- २० जीवन गाथा (मोना भागवती जी) ४००० ३०००
- २१ ईशोपनिषद् ४०००
- २२ नचिकेता के तीन वर ४०००
- २३ याज्ञवल्क्य मंत्रेयी सन्वाद ४००० ४०००
- २४ यज्ञ सुधा ४०००
- २५ पावन-धारा ४०००
- २६ कहाँ है वह ? ४०००
- २७ वैदिक रश्मियाँ, भाग-४ ४०००
- आंग्ल भाषा में प्रकाशित साहित्य
- १ Quest For The Infinite 2000
- शीघ्र ही आगे प्रकाशित होने वाली पुस्तकें ।
- १ क्रिया योग
- २ अष्टांग योग
- ३ वेदोपदेश, भाग-२
- ४ वैदिक आदर्श परिवार भाग-२
- ५ वेनोपनिषद्
- ६ हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है ।
(उसके लिये दिल में श्रद्धा-निष्ठा पैदा करो)

नोट:—पुस्तक विक्रेता आदि को "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन"
लिए २)६० २५ पै० मात्र दान देकर भी यह
प्राप्त की जा सकती है ।

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Accession No.	V. Kumar	19/8/11
Class No.		119/1
Cat No.		
Tag etc.	28/11/11	
E.A.R.		
Recomm. by.	DONATION	
Data Ent. by	28/11/11	5/9/11
Check		



गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान
आदि न लगाये।



प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार,
वेदरत्न, आचार्य एवं उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार

जन्म-थाना, मलाकण्ड एजेन्सी,
जिला-मरदान, फ्रन्टियर
(वर्तमान पाकिस्तान)

जन्मतिथि-७-१-१९३६

पिता का नाम-श्री गंगाविशन जी
शिक्षा-गवर्नमेन्ट हाई स्कूल थाना,
आदर्श हाई स्कूल चन्दोसी,

श्यामसुन्दर मेमोरियल हाईस्कूल चन्दोसी, दयानन्दोपदेशक महा-
विद्यालय यमुनानगर (जिला अम्बाला), गुरुकुल कांगड़ी विश्व-
विद्यालय, हरिद्वार। उपाधियाँ-सिद्धान्त भूषण, सिद्धान्त शिरोमणि,
(दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर), वेदालंकार, एम०ए०
(वैदिक साहित्य) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
प्रचार कार्य-उ०प्र०, दिल्ली, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा,
पंजाब, हिमाचल प्र०, राजस्थान, महाराष्ट्र (बम्बई), गुजरात आदि।
अध्यापन-दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर, गुरुकुल
भुज्जर(हरियाणा), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, प्रोफेसर
अध्यक्ष वेद विभाग, वर्तमान पद-आचार्य एवं उपकुलपति गुरुकुल
कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। लेखन प्रकाशन-३७ पुस्तकें एवं
पत्रिकाओं में लेख आदि। सम्मान एवं पुरस्कार-आचार्य गोवर्धन
शास्त्री स्मृति पुरस्कार १९८१ से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा
संगढ़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर (ii) आर्य साहित्यके क्षेत्र में विशिष्ट
सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३) द्वारा
महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति अजमेर।
(iii) वेदरत्न-मानद उपाधि १९८४ में, द्वारा विश्व वेद परिषद्)